चन्दामामा
अगस्त १९६८
75 P

सबसे आगे सबसे अव्वल....
यह है
लाल-शर
(डाबर बालामृत)
की देन
विजय नहीं हासिल होती है कमजोरों को।
मिलती सदा सफलता जग में रणवीरों को॥
तुम भी आगे बढ़ सकते हो छू सकते हो नभ के तारे।
यदि पियो 'लालशर' ताकतवर टॉनिक रोजाना प्यारे॥
Western/D. 68
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) प्राइवेट लिमिटेड कलकत्ता-२९

# चन्दामामा

अगस्त १९६८

# कोलगेट से दिनभर दुर्गंधमय श्वास से मुक्त रहिए और दन्त-क्षय को रोकिए !

क्योंकि: एक ही बार ब्रश करने से कोलगेट डेन्टल क्रीम ८५ प्रतिशत दुर्गन्ध प्रेरक और दंत क्षयकारी जीवाणुओंको दूर कर देता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो गया है कि कोलगेट १० में से ७ मामलों में दुर्गन्धमय सांस को तत्काल दूर कर देता है और खाना खाने के तुरन्त बाद कोलगेट विधि से ब्रश करने पर दन्त चिकित्सा के समस्त इतिहास में पहले के किसी भी समय की तुलना में अधिक व्यक्तियों का अधिक दन्त-क्षय दूर होता है। केवल कोलगेट के पास ही यह प्रमाण है।

बच्चे कोलगेट से अपने दांतों को नियमित रूप से ब्रश करने की आदत आसानी से पकड़ लेते हैं क्योंकि इसकी देर तक रहने वाली पिपरमेंट जैसी खुशबू उन्हें प्यारी होती है।

यदि आपको पाउडर पसंद हो तो कोलगेट टूथ पाउडर से भी वे सभी लाभ मिलेंगे ... एक डिब्बा महीनों तक चलता है।

नियमित रूप से कोलगेट द्वारा ब्रश कीजिये ताकि इससे आपकी सांस अधिक साफ़ और ताजा तथा दांत अधिक सफ़ेद हों।

...सारी दुनिया में अधिक से अधिक लोग किसी दूसरी तरह के डेंटल क्रीम के बदले कोलगेट ही खरीदते हैं।

LIFEBUOY
for health
लाइफ़बॉय
है जहाँ
तंदुरुस्ती है वहाँ
लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है
हिंदुस्तान लीवर का

दिलीप और उसके साथी
मछली पकड़ने चले
(१)
ऐसा भड़कीला लाल कमीज क्यों पहने हो सुरेश ? सांड से लड़ने जा रहे हो क्या ?
सिर्फ तुमलोगों का मन बहलाने के लिये है—हो सकता है कोई मछली आज हाथ न लगे
आधे घंटे बाद…
एक बड़ी मछली फंसी है !
डटे रहो…डटे रहो… धीरे धीरे डोर को लपेट लो ; छड़ी को कस कर पकड़ो !
मछली से भरी टोकरी लेकर जब वे वापस लौटते थे तो अंधेरा हो गया था। और दिलीप आगे आगे 'एवरेडी' टॉर्च की रोशनी में रास्ता दिखा रहा था।
यह क्या ! यहाँ का फिश प्लेट तो गायब है !
किसी ने ज़रूर हटाया है।
जल्द से जल्द हमें कुछ करना चाहिये ! अगर अभी कोई ट्रेन इधर आ जाये तो ज़रूर उलट जायेगी।
लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं ?
अगले सप्ताह :—ट्रेन आ रही है और सामने लाल सिगनल है।
रोशनी तेज़, शक्ति भरपूर—है यही 'एवरेडी' ज़रूर !
UC 4347

★ उत्तम जायका
★ अनोखा स्वाद
★ कुरमुरा सदा ताजा
★ अद्वितीय पौष्टिकता के लिए हमेशा सर्वप्रथम–

बिस्कुट

इसीलिए तो पारले ग्लुको
भारत के सब से ज्यादा बिकनेवाले बिस्कुट हैं !

everest/340a/PP HN
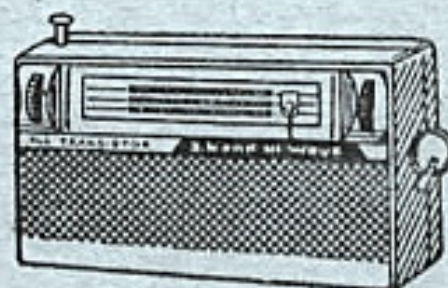
करारी खबर...
SATHE
PICNIC
BISCUITS
आपके मनपसंद
साठे
पिकनिक
बिस्कुट
अब खूबसूरत और
हवासे बचाव करने वाले
कारटन में मिलते हैं।
साठे बिस्कुट एण्ड चॉकलेट कं लि., पूना-२

चन्दामामा
संचालक: चक्रपाणी
पाठकों से प्रति दिन चन्दामामा की कहानियों की तारीफ़ करते हमारे पास असंख्य पत्र आते हैं। उन पत्रों को देख हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। हमारे पास कुछ ऐसे भी पत्र आते हैं जिनमें यह पूछा जाता है कि हम चन्दामामा में अपनी कहानियाँ प्रकाशित करना चाहते हैं। अच्छी कहानियों का हम सदा स्वागत करेंगे। पर लेखकों से हम निवेदन करते हैं कि चन्दामामा के स्तर को दृष्टि में रखकर रोचक कहानियाँ अवश्य ही भेजें, हम प्रकाशित करेंगे।
वर्ष: १९ अगस्त १९६८ अंक: १२

अंग्रेजवालों ने सोचा कि टीपू सुल्तान पिछली लड़ाइयों में पराजित होकर दुर्बल हो गया है और वह आगे सर उठा न सकेगा। लेकिन जल्द ही यह साबित हुआ कि यह उसका भ्रम था।

टीपू पराजय के अपमान को सहते चुप रहनेवाला आदमी नहीं था; साथ ही वह अंग्रेजवालों से बड़ा द्वेष करता था। लड़ाइयों से जो क्षति हुई थी, उसने उसकी पूर्ति की। अपने क़िले को और मजबूत बनाया। अपने घुड़सवार और पैदल-सेना की भी तरक़्क़ी की। जो सामन्त जब-तब उसके विरुद्ध सर उठाने की कोशिश करते थे उनको दबाया। फिर अपने देश को पहले की हालत में लाया।

उन दिनों में यूरोप में अंग्रेज़ और फ्रेंचवालों के बीच भयंकर लड़ाई हो रही थी। राजनीति में कुशल टीपू ने भारत में अंग्रेज़ों के विरुद्ध फ्रेंचवालों की मदद पाने की कोशिश की। वह फ्रेंचवालों के जाकोबिन क्लब का सदस्य बना। अपने दरबार में रहनेवाले फ्रेंचवालों के साथ फ्रेंच रिपब्लिक का झंडा फहरवाया और श्रीरंगपट्टणम में 'स्वातंत्र्य वृक्ष' रोपवाया। भविष्य की लड़ाई में उसकी मदद करने की माँग करते हुए टीपू ने अरेबिया, काबुल, कानिस्टांटिनोपुल तथा अन्य देशों को भी दूत भेजे। यह भी घोषणा की कि भारत से अंग्रेज़ों को भगाने के लिए स्वयंसेवक खुद आगे आवें। इस घोषणा के परिणाम स्वरूप अप्रैल १७९८ में कुछ फ्रेंचवाले मंगलोर में उतरे।

उस महीने के अंत में मद्रास आये हुए अंग्रेज़ गवर्नर जेनरल वेलस्ली ने टीपू के विद्रोह की बात भाँप ली और तुरन्त टीपू के साथ युद्ध की तैयारियाँ कीं। उसने

त्रिदल के समझौते के लिए निज़ाम और महाराष्ट्रों का स्वागत किया। निज़ाम ने सितंबर पहली तारीख को अंग्रेज़ों से एक उप-संधि की। पर महाराष्ट्रों ने कोई स्वस्थ उत्तर नहीं दिया, बल्कि वे टालते रहे। वेलस्ली ने यह भी आशा दिलायी कि युद्ध में प्राप्त होनेवाले लाभ में से कुछ अंश पेशवा को भी दिया जाएगा।

टीपू और अंग्रेज़ों के बीच जो युद्ध हुआ वह बहुत ही छोटा युद्ध कहा जा सकता है। ५ मार्च १७९९ में श्रीरंगपट्टणम के पश्चिम में ४५ मील की दूरी पर एक युद्ध और २७ मार्च को श्रीरंगपट्टणम के पूरब में ४० मील की दूरी पर दूसरा युद्ध हुआ। लेकिन टीपू दोनों युद्धों में हारकर श्रीरंगपट्टणम वापस आया। मई ४ तारीख को अंग्रेज़ों ने श्रीरंगपट्टणम को पकड़ा। अपनी राजधानी की रक्षा करने के लिए टीपू ने बड़ी वीरता के साथ लड़ाई की और क़िले के द्वार पर प्राण छोड़े।

जब वह गोली खाकर नीचे गिरा, उस वक़्त एक अंग्रेज सैनिक ने टीपू के हीरे जड़े कमरबंद को हड़फना चाहा। टीपू ने उसे अपनी तलवार से चोट पहुँचायी। तब अंग्रेज़ सैनिक ने टीपू के सर का

निशाना लगाकर बंदूक़ दाग दी। टीपू वहीं ठंडा हो गया। (टीपू के मरे क़िले का दरवाज़ा इस चित्र में देखिये।)

टीपू की मृत्यु से एक बड़े राज्य का अंत हो गया। अंग्रेज़ों का एक प्रबल शत्रु कम हो गया। विजयी अंग्रेज़ों ने श्रीरंगपट्टणम को खूब लूटा।

मैसूर अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया। टीपू के परिवार को वेल्लूर में बंदी बनाया गया। वेलस्ली ने अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए महाराष्ट्रों को मैसूर के पश्चिम-उत्तर के दो ज़िलों को देना चाहा। लेकिन महाराष्ट्रों ने लेने से साफ़ इनकार

किया। क्योंकि वे इन ज़िलों को लेना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ़ समझते थे। परन्तु अंग्रेज़ों ने निज़ाम को मैसूर के उत्तर-पूर्वी प्रान्त से गुत्ति और गुर्रमकोंडा दिये, तो निज़ाम ने बड़ी खुशी से स्वीकार किया। मैसूर के पश्चिम प्रान्त से केनरा, वैनाडु, कोयंबत्तूर, दारापुर, श्रीरंगपट्टणम इत्यादि पर अंग्रेज़ों ने अधिकार कर लिया।

इस तरह आपस में मैसूर के प्राय: सभी मुख्य ज़िलों को बाँट लेने के बाद जो मैसूर राज्य बच रहा उसके लिए एक बालक को राजा बनाया। वह बालक मैसूर के शासक हिन्दू राजाओं के परिवार का था, लेकिन वह नाम मात्र के लिए राजा था, मैसूर पर पूरा अधिकार अंग्रेज़ों का ही था। मैसूर राजा को उन्हें 'कर' अदा करना था और अंग्रेज़ सेनाओं का खर्च भी उठाना था।

मैसूर को इस तरह बाँटने से अंग्रेज़ों को भूमि-लाभ, अर्थ-लाभ, वाणिज्य-लाभ और सैनिक-लाभ भी हुए। इसलिए वेलस्ली के किये इस प्रबन्ध की इंग्लैन्डवालों ने खूब प्रशंसा की और उसे 'मार्कविस' की उपाधि दी।

टीपू के पतन के साथ इस देश में फ्रेंचवालों का कोई मित्र नहीं रहा। अंग्रेज़वाले भी इस झंझट से मुक्त हो गये! टीपू असाधारण व्यक्ति था। उसमें अनीति और अत्याचार नाममात्र के लिए भी नहीं थे। उसकी राजनीति का ज्ञान भी प्रशंसनीय था। उसने स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि उसका असली शत्रु अंग्रेज़ है, न कि स्वदेशी लोग। टीपू ने इसलिए अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से भगाने की भरसक कोशिश की और हिन्दुस्तान के राजाओं के बीच मैत्री स्थापित करने का अथक परिश्रम किया; परंतु उसका स्वप्न स्वप्न ही बना रहा।
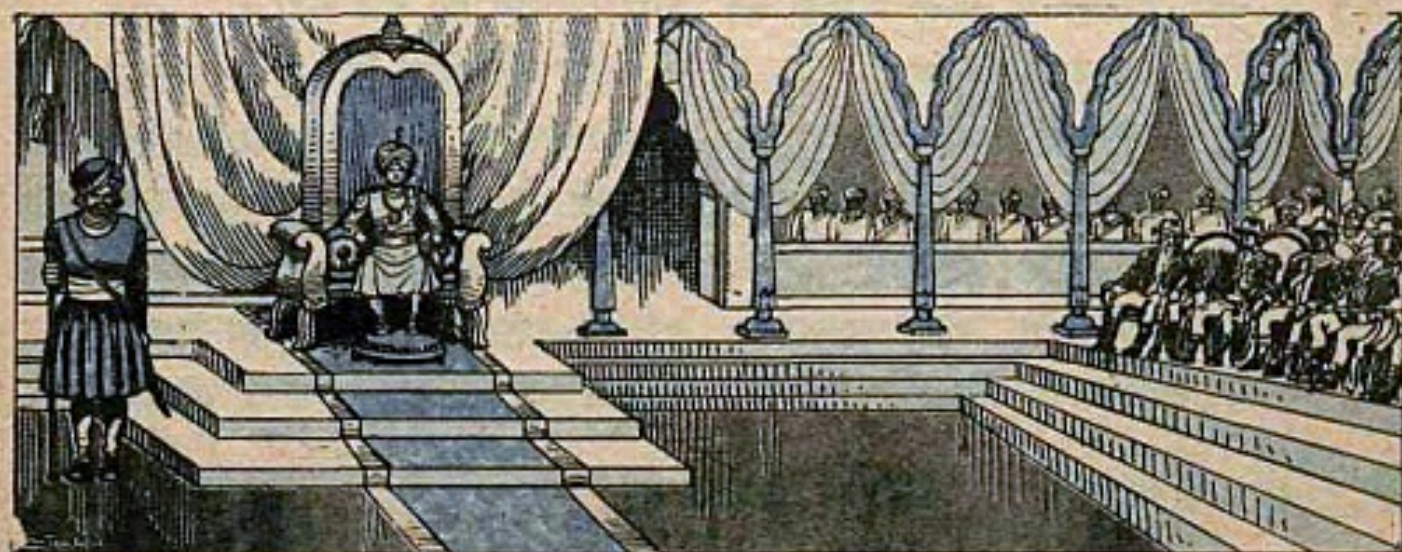
# मुर्गी का चोर

एक गाँव में रघूसिह नामक एक किसान था।

वह बड़ा भोला था, जो कोई कुछ कहता, उस पर यक़ीन करता और धोखा खाता। लेकिन उसकी पत्नी रामदेई बड़ी होशियार थी। परिवार का भार उठाना उसके पति से बनते न देख उसने अपने गहने बेच दिये और पचास मुर्गियाँ खरीद लीं। उनके अंडे गाँववालों में बेचकर गुजारा करने लगी।

रघूसिह के पड़ोस में चंपतलाल नामक एक अमीर रहता था; वह बड़ा कंजूस था। अपना सारा धन तिजोरी में रखकर उसकी पूजा करता था। मुर्गी के मांस से उसका बड़ा प्रेम था; पर पैसा देकर मुर्गी खरीदने को उसका मन नहीं मानता था। रघूसिंह के अहाते में मुर्गियों को देखते उसका मन खींचने लगता था, मचलता भी था। इसलिए रात के समय चंपतलाल रघूसिह के घर की दीवार लांघकर मुर्गियों को रोज हड़फने लगा।

कुछ दिन बीत गये। रामदेई को ऐसा लगा कि मुर्गियाँ दिन ब दिन कम होती जा रही हैं। चोर को पकड़ने के लिए उसने रातों में मुर्गियों के पहरा देने का प्रबन्ध किया। एक दिन रामदेई पहरा देती, तो दूसरे दिन रघूसिह पहरा देता। रामदेई रात-भर जागती रहती, कभी भूल से भी सोती न थी। लेकिन रघूसिह खुर्राटा लेकर सो जाता। यह बात जानकर चंपतलाल उन्हीं दिनों में मुर्गियों की चोरी करता, जिन दिनों में चंपतलाल का पहरा होता।

"तुम्हारे सिर हमेशा नींद सवार रहती है। तुम्हारा पहरा देना, न देना, बराबर है। यही हाल रहा तो हमें बहुत जल्द भीख मांगनी पड़ेगी।"

महेश प्रसाद

पिछवाड़े में जो आहट हुई उससे रामदेई जाग पड़ी। वह घबरा गयी और दिया लेकर आ पहुँची। उसने पूछा–"चोर-वोर तो नहीं आया?"

हाथ में आये चोर को निकल भागे देख रघूसिंह का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। अपने पति की नाक़ाबिलियत पर रामदेई खीझने लगी। उसे दिये की रोशनी में चाभियों का गुच्छा दीख पड़ा।

"अच्छा, चोर मिल गया। चोर यहाँ पर चाभियों का गुच्छा छोड़ गया है। वह चाभियों का गुच्छा लेने जरूर आएगा, तब उसे पकड़ लो।" यह कहकर रामदेई चाभियों का गुच्छा लेकर भीतर चली गयी।

रामदेई ने अपने पति को डांट बतायी।

रघूसिंह जोश में आया, अपनी बारी के समय कंबल ओढ़े अंधेरे में बैठा पहरा देने लगा। आधी रात के समय मुर्गियों की कोठरी के पास कोई आहट हुई। कोई नाक़ब डाले उधर बढ़ रहा था। अंधेरे में उस आदमी को पहचानना मुशिकल था। रघूसिंह ने झपटकर उसे पकड़ लिया।

चंपतलाल रघूसिंह से ज्यादा मजबूत था, इसलिए उसकी पकड़ को छुड़ाकर दीवार लांघकर भाग गया। मगर इस खींचातानी में चंपतलाल की कमर से चाभियों का गुच्छा नीचे गिर गया।

चंपतलाल इसलिए खुश था कि वह बड़ी आफ़त से बच गया। क्योंकि अगर वह पकड़ा जाता तो उस गाँव में मुँह दिखाने लायक़ न रह पाता। उसने कमर में चाभियों का गुच्छा लेने टटोला, लेकिन नहीं मिला। उसने भाँप लिया कि वह गुच्छा रघूसिंह के अहाते में गिर गया है। उसने सोचा कि रघूसिंह के भोलेपन से फ़ायदा उठाकर चाभियों का गुच्छा ले लेना होगा।

दूसरे दिन सुबह चंपतलाल रघूसिंह के घर गया और बोला–"रघू! तुम्हें कोई जल्दी का काम न हो तो चलो, मेरे साथ; खेत की ओर हो आएँगे।" रघूसिंह उसके साथ हो लिया।

चलते-चलते चंपतलाल ने रघूसिंह से पूछा–"रघू, तुम कह रहे थे कि तुम्हारी मुर्गियों की चोरी हो रही है, क्या चोर मिल गया?"

रघूसिंह जोश में आकर बोला–"हाँ, हाँ, चंपतलाल! रात को उसे पकड़ लिया। लेकिन उसकी क़िस्मत भली थी, भाग गया; नहीं तो उसकी हड्डी-पसली तोड़ देता। फिर भी उसे मेरे पास आना होगा। वह बदमाश चाभियों का गुच्छा छोड़ गया है। इसलिए वह जब चाभियों का गुच्छा लेने आएगा तब उसकी खबर लूँगा।"

चंपतलाल ने सोचने का अभिनय करते हुए कहा–"देखो, रघू! आज तक तुम्हारी मुर्गियों की चोरी करनेवाला आदमी नहीं था। मुर्गियों का पिशाच था। उसे मुर्गियाँ बहुत पसंद है। मेरा दादा कहा करता था कि श्मशान में उसकी तिजोरी है। उसकी चाभियों का गुच्छा वह हमेशा कमर में खोंसे घूमा करता है। अब क्या? तुमको चोर मिल गया। आधी रात के समय तुम अपनी पत्नी से कहे बिना चाभियों का गुच्छा लेने के लिए श्मशान में आ जाओ। मैं भी आकर तुमको पिशाच की तिजोरी दिखाऊँगा। लेकिन यह बात याद रखो, पिशाच हमेशा श्मशान में ही रहता है। यह रहस्य अपनी पत्नी से न कहना।"

बेचारे रघूसिंह ने चंपतलाल की बातों को सच माना। उस रात को पहरा देने का काम रामदेई का था। वह पिछवाड़े में लेट रही। आधी रात के

समय रघूसिंह उठा और रामदेई की पेटी में से चाभियों का गुच्छा लेकर श्मशान की ओर चला गया।

वहाँ पर एक समाधी की बगल में रघूसिंह को एक आकार दिखाई दिया। उसे चंपतलाल मानकर रघूसिंह धीरे से बोला–"चंपतलाल, चाभियों का गुच्छा लाया हूँ।" यह कहते रघूसिंह ने चाभियों का गुच्छा हाथ में पकड़कर हिलाया।

वास्तव में वह आकार चंपतलाल ही था। लेकिन वह बिना कुछ बोले रघूसिंह के हाथ से चाभियों का गुच्छा खींचने लगा। रघूसिंह ने उसे पिशाच मानकर अपनी सारी ताक़त लगा कर लड़ाई की।

आखिर चंपतलाल ने अपनी चाभियों का गुच्छा किसी न किसी तरह रघूसिंह के हाथ से खींच लिया। लेकिन इस खींचा-तानी में चंपतलाल की उँगली की अँगूठी रघूसिंह के हाथ में निकल आयी। इस ओर ध्यान दिये बिना चंपतलाल भाग कर अंधेरे में ग़ायब हो गया।

चाभियों का गुच्छा तो चला गया। लेकिन सोने की अंगूठी मिलने के कारण रघूसिंह खुश होते हुये घर पहुँचा।

सवेरा होते ही रघूसिंह ने अपनी पत्नी से चंपतलाल की बातें और श्मशान की बातें भी कह सुनायीं और अंगूठी भी दिखाई। अंगूठी को रामदेई ने पहचान लिया कि वह चंपतलाल की है। अलावा इसके उस पर चंपतलाल का नाम खुदा हुआ था।

चोर मिल गया। रामदेई ने गाँव के मुखिया के पास जाकर अंगूठी दिखाकर सारी कहानी सुनाई। मुखिया ने चंपतलाल को बुला भेजा और उससे रामदेई का सारा नुक़सान दिलवाया। अब चंपतलाल उस गाँव में न रह सका और कहीं चला गया। उस दिन से रामदेई के घर में भी मुर्गियों की चोरी नहीं हुई।

# शिथिलालय

[ ७ ]

[ शिखिमुखी और विक्रमकेसरी के गोबस्ती में जाने की ख़बर मिलते ही शिवाल कुछ अनुचरों के साथ उस बस्ती में गया। उसके पहुँचने के पहले ही शिखिमुखी ने लट्ठूसिंह को भाले से चुभोकर धानवाले गड्ढ़े में गिरा दिया था। लट्ठूसिंह के अनुचर शिखिमुखी की ओर बढ़ ही रहे थे कि शिवाल ने उनको हथियार डालने की चेतावनी दी। बाद-.]

लट्ठूसिंह घायल हो धानवाले गड्ढ़े में गिर गया, तब उसके अनुचरों का दूसरा नेता शिवाल की चेतावनी पाकर समझ गया कि आफ़त में फँस गया है। इस हालत में झगड़ा मोल लेने से उनका सर्वनाश ही होगा। अगर शिवाल के अधीन हो जाए तो सवरों की बस्ती में उसके और लट्ठूसिंह की इज्जत जाती रहेगी...।

सवर ने यह विचार कर शिवाल की ओर मुखातिब हो कहा-"तुम लोग हमको चारों तरफ़ घेरे हुए हो! गिनती में भी हम से तीन गुने ज्यादा हो! यह न्याय नहीं कहलाएगा। यह तुम लोगों का धर्म-युद्ध भी नहीं।"

ये बातें सुनते ही शिखिमुखी ने सवर-नेता की ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा-"तुम लोग हर बात में न्याय

और धर्म की दुहायी देते हो! लगता है, तुम लोगों ने यह बात पुजारी से सीख ली है। पैसे के लोभ में पड़कर कहीं दूसरो जगह से आये हुए पुजारी की मदद करना क्या न्याय और धर्म कहलाएगा? तुम लोग इस गोबस्ती पर हमला करके अनाज लूट रहे हो! यह कैसा धर्म है? अब बकवास बंद करके हथियार डाल दो!"

"हमारे बेहथियार होते ही तुम लोग हमें भालों से भोंक-भोंककर मार नहीं डालोगे, इसका क्या भरोसा?" सवर ने अपना संदेह प्रकट करते हुऐ शिखिमुखी से कहा।

"यह सब हमारी दया पर निर्भर होगी! तुम लोग हथियार डाल दोगे या नहीं..." यह कहते शिखिमुखी ने विक्रमकेसरी के साथ खड़े युवकों की ओर देखा।

शिखिमुखी की बातों से लगता था कि अब खून-खराबी होनेवाली है। इसे बचाने के लिए शिवाल ने अपना भाला दूर फेंकते हुए कहा–"मैं यक़ीन दिलाता हूँ, तुम लोगों में से किसी सवर की कोई हानि न होगी। चाहें तो तुम अपने हथियार पास ही रख लो। मुझे कोई एतराज नहीं। मुझे सिर्फ़ शिथिलालय के पुजारी से मतलब है। वही मेरा जानी दुशमन है। यह बताओ, तुम्हारा नेता लट्ठूसिंह कहाँ पर है?"

"यहाँ पड़ा हूँ, धान के गड्ढ़े के अंदर। घावों से खून बह रहा है; आँखें चकरा रही हैं!" धान के गड्ढ़े में से सवर-नेता लट्ठूसिह करुणा भरे स्वर में चिल्ला उठा।

शिवाल ने अचरज में आकर उस ओर देखा, जिस ओर से यह आवाज़ आयी थी। जल्दी वह धान के गड्ढ़े के पास पहुँचा और उसने झांककर देखा।

चलाने और पैंतरे बदलने में मेरे बराबर है। उसके साथ मैं अपनी जवान लड़की नागमल्ली को ब्याहना चाहता हूँ। क्यों शिवाल! तुम क्या कहते हो?" ठठाकर हँसते हुए लट्टूसिह बोला।

इन बेमतलब की बातों को सुनते ही शिवाल ने सोचा कि ऊपर से गड्ढ़े में गिरने और घावों से खून के बह जाने से शायद लट्टूसिह का मति-भ्रमण हो गया है। शिवाल ने तुरन्त अपने अनुचरों को लकड़ी का तख्ता लाने का आदेश दिया, उसके दो सिरों पर रस्सियाँ बँधवायीं और दो अनुचरों को गड्ढ़े में उतरवाया। उन दोनों ने लट्टूसिह को उठाकर तख्ते पर लिटा दिया, ऊपर से लोगों ने रस्सियों की मदद से लट्टूसिह को इस तरह ऊपर खींचा जैसे जाल में फँसे जानवर को खींचा जाता है।

लट्टूसिह ने आश्चर्य से अपने अनुचरों को देखते हुए पूछा—"अरे! सब के पास हथियार हैं! यहाँ किसकी जीत हुई है? हमारे कितने आदमी मर गये?"

सवरों के दूसरे नेता ने लट्टूसिह के आगे आकर कहा—"मालिक! शबर-नेता शिवाल साहब ने खून-खराबी होने से रोक

लट्टूसिह जो गड्ढ़े में पड़ा हुआ था, सर उठाकर दीनता से शिवाल की ओर देखने लगा।

"लट्टूसिह! यह क्या है? घायल हो गये हो, जल्दी ऊपर आओ! शिथिलालय के पुजारी को पकड़ने के लिए मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।" शिवाल ने कहा।

"अगर ऊपर आ सकता तो कभी का आया होता। भाले की चोट खाकर मेरा दायाँ हाथ बेकाम हो गया है। मालूम होता है, बाएँ पैर की जोड़ भी टूट गयी! जानते हो, यह सब किसने किया? तुम्हारे लड़के शिखिमुखी ने। वह हिम्मत में, भाले

दिया है। हमारे दल के सभी लोग मज़े में हैं।"

ये बातें सुनते ही लट्ठूसिंह ने शिवाल की ओर मुखातिब होकर गदगद् स्वर में कहा–

"मैंने तुम्हारी जाति के प्रति बड़ा अन्याय किया है। बदमाश, कुत्ते पुजारी ने मुझे सोने का लोभ देकर मुझसे यह सब काम करवाये! मुझे माफ़ कर दो! आज से हम सब एक हैं।"

"जो हुआ सो हुआ। अब हम दोनों उन बातों को भूल जाएँगे। पहले तुम्हारे हाथ-पैर में पट्टी बंधवा देता हूँ। बाद हम सब मिलकर पुजारी का शिकार करने निकलेंगे।" शिवाल ने लट्ठूसिंह से कहा। फिर थोड़ी दूर पर खड़े एक वृद्ध को बुलाकर शिवाल ने आदेश दिया–"सवर-जाति के नेता लट्ठूसिंह का इलाज करो।"

वह वृद्ध गाँव का वैद्य है। वह हमेशा वैद्य संबन्धी चीजें थैली में रखे, कंधे पर लटकाये घूमा-फिरता है। उसने लट्ठूसिंह के हाथ के घाव पर किसी पत्ते का रस निचोड़ दिया, ऊपर दो-तीन पत्ते रखकर पट्टी बाँध दी। बाद लट्ठूसिंह के बाएँ पैर की अपनी उँगलियों से जाँच की; दो

सवरों को लट्ठूसिंह के हाथों को खींचकर पकड़ने का आदेश दिया; दो बाँस की तीलियों को घुटने के ऊपर और नीचे रखकर, रस्सी से कसकर बाँध दिया और गाँठ लगायी; इलाज के समय लट्ठूसिंह पीड़ा से कराह उठा और बोला–"इस पीड़ा की वजह वही कुत्ता पुजारी है! उसने जो सोने की ईंटें दी हैं, उन्हें महानदी में फेंक दो। पुजारी पर भाले चुभो-चुभोकर उसे देवदारु वृक्ष पर लटका दो!" पट्टी का काम खतम होते ही गाँव के वैद्य ने लट्ठूसिंह की आँखों में तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा–"लट्ठूसिंह! मैंने वैद्य के

नाते अपना कर्तव्य किया! अब बताओ! मेरे गाँव से जो अनाज लूट ले गये हो उसे वापस दोगे कि नहीं?"

"मेरे अनुचर बहुत कम अनाज उठा ले गये हैं। बाक़ी को उठा लें जाते देख शिखिमुखी ने शेर की तरह हमपर हमला किया। मेरे अनुचर जितने बोरे अनाज ले गये हैं, उसके दुगने बोरे मैं अपने अनाज से दूंगा।" वैद्य को जवाब देकर लट्ठूसिंह ने अपने अनुचरों को बुलाया और आदेश दिया—"बोरों में जो अनाज बंधा है उसे घान के गड्ढे में गिरा दो! हमारे सवर जितने बोरे यहाँ से उठा ले गये हैं, उसके दुगुने बोरे हमारी बस्ती से ले आओ।"

अपने नेता के यह कहते ही कुछ सवर बस्ती की ओर रवाना होने लगे। लट्ठूसिंह ने उन्हें रोकते हुए कहा—"पुजारी अपनी गुफा को छोड़कर जंगल में घूमता होगा। अगर उससे तुम्हारी मुलाक़ात हुई तो उससे कह दो कि हमारे सभी सवर शिवाल के हाथ बंदी हो गये हैं, बाक़ी लोगों की जान खतरे में है। समझे!"

इसके बाद शिवाल लट्ठूसिंह को दो अनुचरों के साथ गाँव के चौपाल में उठवा ले गया।

गाँव के चौपाल में एक तरफ़ शिवाल, शिखिमुखी और विक्रमकेसरी बैठे थे, तो दूसरी तरफ़ लट्ठूसिंह अपने अनुचरों द्वारा बिछाये गये मृग-चर्म पर दीवार से सटकर बैठा था। शिवाल के पूछने पर लट्ठूसिंह ने कहा कि शिथिलालय का पुजारी एक सप्ताह पहले उसकी बस्ती में आया था, घूस के रूप में बहुत सोना देकर बोला था कि विक्रमकेसरी के यहाँ से ताड़पत्रोंवाला ग्रंथ लाकर उसे दे।

आगे लट्ठूसिंह ने शिवाल से कहा—"शिवाल, उसने मुझे जो सोना दिया था

उसी के लिए मैंने ये सब बुरे काम कर डाले। उसने यह भी कहा था कि मुझे मंत्र-तंत्र सिखाकर इस जंगल का महाराजा बनाएगा। वह यह ताड़-पत्र ग्रंथ क्यों चाहता है? इसका क्या रहस्य है? बताओ तो सही, मैं भी जानूँ?"

"यह सवाल तुम्हारे पूछने का नहीं। एक तरह से मैं भी उन ताड़-पत्रों के रहस्यों को पूरा-पूरा नहीं जानता। यह बात छोड़ दो! अगर शिथिलालय का पुजारी इन प्रदेशों में आज़ादी के साथ घूमते रहे और बाद को ब्रह्मपुत्र नदी की घाटियों में जावेगा तो खतरनाक हो सकता है। इसलिए उसे पकड़कर यहीं मार डालेंगे। वह इस वक़्त किस गुफा में छिपा हुआ है?" शिवाल ने पूछा।

लट्ठूसिंह ने शिखिमुखी की ओर घूमकर शिवाल से कहा—"तुम्हारा शिखी आस-पास के सभी जंगल और पहाड़ों को अच्छी तरह जानता है। शिखी! नन्दी पहाड़ के नीचे जो ताड़ का बगीचा है उसे तुम जानते होगे। उसके दक्षिण किनारे एक पाँच सरोंवाला ताड़ का पेड़ है। उसपर चढ़कर, सब से बड़ा जो सिर है उसके ऊपर से देखोगे तो सीध में पुजारी की गुफा दिखाई देगी। उस गुफा के अगल-बगल में और कुछ गुफायें हैं। इसलिए उस दुष्ट की गुफा को पहचानने के लिए यही एक मार्ग है।"

"उस गुफा के सामने क्या पहरेदार होते हैं?" शिखिमुखी ने पूछा।

"गुफा के आगे कोई पहरेदार नहीं है; लेकिन ताड़ के बगीचे में हमारे दो-तीन सवर हैं। मैं अभी उन्हें खबर भिजवाये देता हूँ कि वे तुम्हारी मदद करें।" लट्ठूसिंह ने कहा।

शिवाल की अनुमति पाकर शिखिमुखी, विक्रमकेसरी और चार अनुचरों को साथ लेकर नन्दी पहाड़ की ओर निकल पड़ा।

ज़रूरत के लिए शिखिमुखी धनुष और बाण भी साथ ले गया। जब वे नन्दी पहाड़ पहुँचे तब सूरज पश्चिम की ओर डूबने जा रहा था। ताड़ के बगीचे में रहनेवाले लट्ठूसिंह के अनुचरों को पहले ही अपने नेता से खबर मिल गयी थी। इसलिए वे आदमी शिखिमुखी और विक्रमकेसरी को पाँच सिरोंवाले ताड़ के पेड़ के पास ले जाकर बोले—"आप पेड़ पर चढ़कर देखिये। पुजारी गुफा में ही है। दो-तीन घंटों से न मालूम वह क्यों सारी गुफा में पागल की तरह चक्कर काट रहा है? गुफा में ज़्यादा रोशनी नहीं है। इसलिए यह साफ़ नहीं मालूम होता कि वह क्या कर रहा है?"

शिखिमुखी और विक्रमकेसरी ने आपस में सलाह-मशविरा किया। यह निर्णय किया कि विक्रमकेसरी कुछ अनुचरों को साथ लेकर पास जाएगा। अगर पुजारी उनको आते देख भाग जाने की कोशिश करेगा तो शिखिमुखी पेड़ पर से बाण छोड़कर पुजारी को मार डालेगा या घायल करेगा।

थोड़ी देर बाद विक्रमकेसरी पहाड़ पर चढ़कर जब गुफा के पास पहुँचा तब गुफा में अब तक छाया की भान्ति इधर-उधर घूमनेवाले पुजारी का आकार शिखिमुखी को लगा कि हठात उछलकर कूदने जा रहा है। शिखिमुखी ने सोचा कि पुजारी भागने की कोशिश कर रहा है, उसने निशाना देखकर बाण छोड़ा। बाण के लगते ही गुफा में रहनेवाला आकार पीड़ा से भालू की तरह एक बार गरज उठा।

उस गरजन को सुनते ही विक्रमकेसरी के साथ रहनेवाले शबर गुफा की ओर दौड़ पड़े। "पुजारी भालू बन गया है!" यह कहते शिखिमुखी पेड़ से उतरा और गुफा की ओर दौड़ने लगा। (और है)

# वीर गांगेय

हठी विक्रमादित्य पेड़ के पास वापस लौटा। पेड़ से शव उतारकर, कंधे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने यों कहा–

"राजन्! तुम सचमुच शक्तिशाली हो! लेकिन मुझे संदेह है कि वीर गांगेय की तरह तुम्हारी शक्ति भी बेकार हो जाय। श्रम को भुलाने के लिए मैं तुम्हें वीर गांगेय की कहानी सुनाता हूँ, सुनो।"

बेताल यों कहने लगा–

मणिपुर पर महाराजा शूरसेन शासन करता था। वह हर साल विजयादशमी का उत्सव बड़ी शान से मनाया करता था। उस वक़्त तलवार के पैंतरों, मल्लयुद्ध और धनुर्विद्या के प्रदर्शन होते थे। उन प्रदर्शनों में भाग लेने दूर-दूर से लोग आते थे। अष्टमी के दिन जो प्रदर्शन होते थे उनमें

## वेताल कथाएँ

जीतनेवालों को राजा दशमी के दिन तक अपने अतिथि बनाकर रखता, उनको नृत्य, संगीत वग़ैरह मनोरंजन के साथ बढ़िया भोज देता और पुरस्कार देकर खुश करता, तब भेज देता। अकसर अष्टमी के दिन के प्रदर्शन में जीतनेवाले दूसरे देशों के लोग ही होते थे।

एक साल जब प्रदर्शन हो रहे थे, उनमें भाग लेने के लिए तलवार के पैंतरें बदलने वाला एक प्रवीण आया। उसने लगातार पाँच आदमियों के हाथों से तलवारें काट दीं और चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाते कहा–"कोई और बचा है?"

प्रेक्षकों के बीच में बैठे मनोरंजन देखनेवाला एक सुंदर युवक म्यान से तलवार खींचकर सामने आया। दोनों की तलवारें टकरायी ही थीं, बस, प्रवीण की तलवार उसके हाथ से उड़ गयी।

राजा ने उस युवक को अपने पास बुलाकर पूछा–"तुम्हारा क्या नाम है?"

"महाराज! मुझे गांगेय कहते हैं; कुछ लोग वीर गांगेय भी पुकारते हैं।" युवक ने जवाब दिया।

"तुम किस देश के रहनेवाले हो?" राजा ने फिर पूछा।

"मैं इसी देश का हूँ।" गांगेय ने कहा। राजा को बड़ी खुशी हुई कि इतने साल बाद अपने देश का नाम रखनेवाला एक युवक दिखाई दिया।

और विजेताओं के साथ गांगेय भी तीन दिन तक राजपरिवार का अतिथि रहकर चला गया। उन्हीं दिनों में उसको राजकुमारी को देखने और उससे बातें करने का मौक़ा भी मिला।

राजकुमारी ने जिस क्षण गांगेय को देखा, उसी वक़्त उसने उससे प्रेम किया। राजकुमारी ने सोचा कि अगर वह उससे

प्रेम करता है तो अपने पिता को मनवा कर उसके साथ शादी करेगी। इसलिए एक होशियार सहेली के ज़रिये राजकुमारी ने उस युवक की इच्छा जानने की कोशिश की। सहेली ने लौटकर राजकुमारी से कहा—"गांगेय तुम पर जान देता है और तुम से भी ज़्यादा प्यार करता है। उसकी हालत बड़ी शोचनीय है।"

यह बात सुनकर राजकुमारी बहुत खुश हुई। विजयादशमी के दिन राजमहल के सभी नौकर-चाकर इनाम लेने आये। उनमें एक धोबिन भी थी। राजकुमारी से इनाम लेते हुए उसने गुप्त रूप से पूछा—"राजकुमारी जी, चोरों के सरदार का लड़का गांगेय यहाँ क्यों आता है?" राजकुमारी चकित होकर बोली—"चोरों के सरदार का लड़का कौन?"

"वही! वह जवान लड़का है न, गांगेय? वे लोग शहर के बाहर पुराने क़िले में रहते हैं। उनके कपड़े हमीं धोते हैं!" धोबिन ने जवाब दिया।

राजकुमारी बड़ी निराश हो गयी।

"यह बात और कहीं न कहो। कल वह अपने रास्ते चला जाएगा।" राजकुमारी ने धोबिन से मिन्नत की।

दूसरे दिन गांगेय राजा से पुरस्कार लेकर अपने घर चला गया। वह राजकुमारी का नाम सोते-जागते जपने लगा। लेकिन उसे फिर राजकुमारी को देखने का मौक़ा न मिला।

राजकुमारी भी मन ही मन गांगेय के वास्ते परेशान रहने लगी। लेकिन उसने उसके साथ विवाह करने की कोशिश न की। कुछ समय बाद राजा ने जब राजकुमारी की शादी के प्रयत्न किये तब उसने इनकार नहीं किया। पड़ोसी राज्य के युवराज के साथ उसकी शादी हो गयी।

युवराज को बड़ा गुस्सा आया। अपने सैनिकों से बोला–"देखते क्या हो? इस बदमाश को मार डालो!"

तुरन्त युवराज के दल के बीस सैनिक भाले लेकर गांगेय पर टूट पड़े। लेकिन उनमें कई लोग बुरी तरह से घायल हुए। युवराज रथ से उतर पड़ा और पीछे से जाकर गांगेय की पीठ में छुरी भोंक दी। गांगेय वहीं ठंडा पड़ गया।

राजकुमारी रथ पर बैठे सब देखती रही। गांगेय के गिरते ही वह नीचे उतर आयी और उसका सर अपनी गोद में रखे, फूट-फूट कर रोने लगी। गांगेय ने बड़े प्रेम से राजकुमारी की आँखों में देखा, वह एक फीकी हँसी हँसकर बोला–"चिन्ता न करो! तुम्हारे वास्ते मरने से बढ़कर मुझे और क्या आनंद हो सकता है?"

गांगेय ने वहीं प्राण छोड़ दिये।

यह सारा दृश्य युवराज अपनी आँखों से देखता रहा। उसने राजकुमारी की पीठ में छुरी भोंकी। राजकुमारी ने गांगेय के शव पर गिरकर प्राण छोड़ दिये।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा–"राजन्! मेरा एक संदेह है। गांगेय दुस्साहस करके अपने हाथ से जान धो बैठा।

युवराज अपनी पत्नी और सदल-बल अपने राज्य के लिए रवाना हुआ।

गांगेय गुप्त रूप से राजकुमारी की शादी के सभी समाचार जानता रहा। युवराज जब जंगल से होकर जाने लगा तब गांगेय ने उनको बीच में रोक दिया।

"तुम सचमुच वीर हो तो मुझसे भाला लेकर लड़ो! मुझे मारकर राजकुमारी को ले जाओ! क्योंकि मेरे शरीर में प्राण के रहते मैं राजकुमारी को दूसरे की पत्नी न होने दूंगा। तुमको मारकर मैं राजकुमारी को अपनी बनाने आया हूँ।" गांगेय ने युवराज से कहा।

लेकिन राजकुमारी ने क्यों अपने प्राणों के साथ खिलवाड़ किया? हम यह समझ सकते हैं कि गांगेय ने राजकुमारी से जान से बढ़कर प्यार किया, इसलिए उसने अपने प्रेम के लिए अपने प्राणों की बलि दी। पर राजकुमारी ने उससे प्यार नहीं किया। जब उसके पिता ने युवराज के साथ उसकी शादी निश्चित की तब भी उसने कोई आपत्ति नहीं की। ऐसी हालत में राजकुमारी ने ऐसा काम क्यों किया जिससे उसकी जान पर आ पड़ी? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।

इस पर विक्रमादित्य बोले—"हम यह नहीं कह सकते कि राजकुमारी ने गांगेय से कम प्रेम किया। गांगेय ने राजकुमारी के साथ प्यार करने में कोई त्याग न किया। परन्तु राजकुमारी गांगेय से शादी करती तो उसके पिता के वंश पर कलंक लगता। क्योंकि गांगेय का पिता अव्वल दर्जे का लुटेरा था। इसलिए राजकुमारी ने अपने प्रेम का त्याग किया और अपने पिता के साथ निश्चित वर के साथ शादी की। गांगेय वीर है, लेकिन उसे न मालूम था कि उसका पति वीर नहीं है। यह बात उस वक़्त मालूम हुई जब जंगल में गांगेय ने उसे रोक दिया। युवराज सचमुच वीर होता तो अकेले गांगेय पर उसकी ललकार के विरुद्ध कई सैनिकों को नहीं भेजता। उसने पीछे से गांगेय पर वार करके यह साबित किया कि वह वीर तो है ही नहीं, बल्कि नीच भी है। यह जानने पर राजकुमारी को यही अच्छा लगा कि ऐसे नीच राजा की पत्नी बनकर जीने के बदले, गांगेय की प्रेयसी के रूप में मरना कहीं अच्छा है।"

इस प्रकार राजा के मौन-भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो, पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

# परोपकारी पन्नालाल

पन्नालाल ने कुछ दिन पहले गाँव के बाहर थोड़ी-सी ज़मीन ख़रीद ली। उसकी माँ और पत्नी ने पन्नालाल को सलाह दी कि उस ज़मीन में तरकारी पैदा करने से बेचकर फ़ायदा उठा सकते हैं। पन्नालाल को भी यह सलाह बड़ी अच्छी लगी। उसके मन में तरकारी बेचकर रुपये कमाने की इच्छा तो न थी, लेकिन वह चाहता था कि तरकारियाँ बड़े महँगे दाम पर बिकती हैं। इसलिए तरकारी पैदा कर लोगों में बाँट दे तो बड़ा पुण्य होगा!

यह सोचकर पन्नालाल ने ज़मीन के चारों ओर बाड़ा लगवाया, कुआँ गहरा खुदवाया और केले, बैंगन, भिंडी, कुम्हड़ा, तुरई, चचींड़ा, वग़ैरह पौधे लगवाये। कुछ महीनों के बाद पौधों में तरकारियाँ लगने लगीं। पन्नालाल अपने परिवार-भर के लिए जितनी तरकारियों की ज़रूरत होतीं, रख लेता और बाक़ी अड़ोस-पड़ोस, जान पहचान और माँगनेवालों में बाँटता रहता।

पन्नालाल की माँ और पत्नी का ख़्याल था कि अगर तरकारियाँ दूसरों में मुफ़्त न बाँटकर बेच दें तो ज़मीन के दाम मिल जायेंगे। लेकिन वे यह सोचकर चुप रहीं कि पन्नालाल उनकी बातों पर ध्यान न देगा।

उसी गाँव में रंगनाथ नामक एक ग़रीब था। वह रोज़ पन्नालाल के पास आता और तरकारियाँ मांगकर ले जाता। वह पन्नालाल के मिजाज़ को अच्छी तरह जानता था। इसलिए एक दिन वह तरकारियों के खेत में आया और एक झाबा दिखाते हुए बोला—"पन्नालालजी, आज मेरे घर बहुत-से मेहमान आये हैं, कुछ हफ़्ते यहीं ठहरनेवाले हैं। इसलिए कुछ ज़्यादा तरकारियाँ दें तो बड़ी मेहरबानी होगी..."

पशुपति मिश्र

"भाई, इसमें कौन बड़ी बात है? जितनी चाहो, ले जाओ।" पन्नालाल ने कहा।

रंगनाथ झाबा भरकर तरकारियाँ ले गया और सीधे हाट में जाकर उसने सब तरकारियाँ दो रुपयों में बेच दीं।

उस दिन से लेकर रंगनाथ रोज़ खेत में आता, झाबा भरकर तरकारियाँ ले जाता और हाट में बेचकर पैसे बना लेता। कभी-कभी रंगनाथ के तरकारियाँ ले जानें के बाद पन्नालाल के लिए कुछ बचती न थीं। फिर भी पन्नालाल कभी दुखी न हुआ। उसे यह बिलकुल मालूम न था कि रंगनाथ तरकारियाँ ले जाकर हाट में बेच देता है।

लेकिन कुछ दिन बाद यह बात पन्नालाल के कानों में पड़ी। अड़ोस-पड़ोसवाली औरतें पन्नालाल की पत्नी मीनाक्षी से पूछने लगीं–"क्यों, तरकारियों का व्यापार कैसे चलता है? बड़ा लाभ मालूम होता है?"

"व्यापार ही नहीं करते? तुम लोग यह क्या कहते हो?" मीनाक्षी जवाब देती।

"वे क्यों करने लगे! रंगनाथ से हाट में जो बिकवाते हैं!" सब यही जवाब देतीं।

एक दिन मीनाक्षी ने पन्नालाल से पूछा–"क्या आप रंगनाथ से तरकारियाँ बिकवाते हैं? सब कोई यही कहती हैं!"
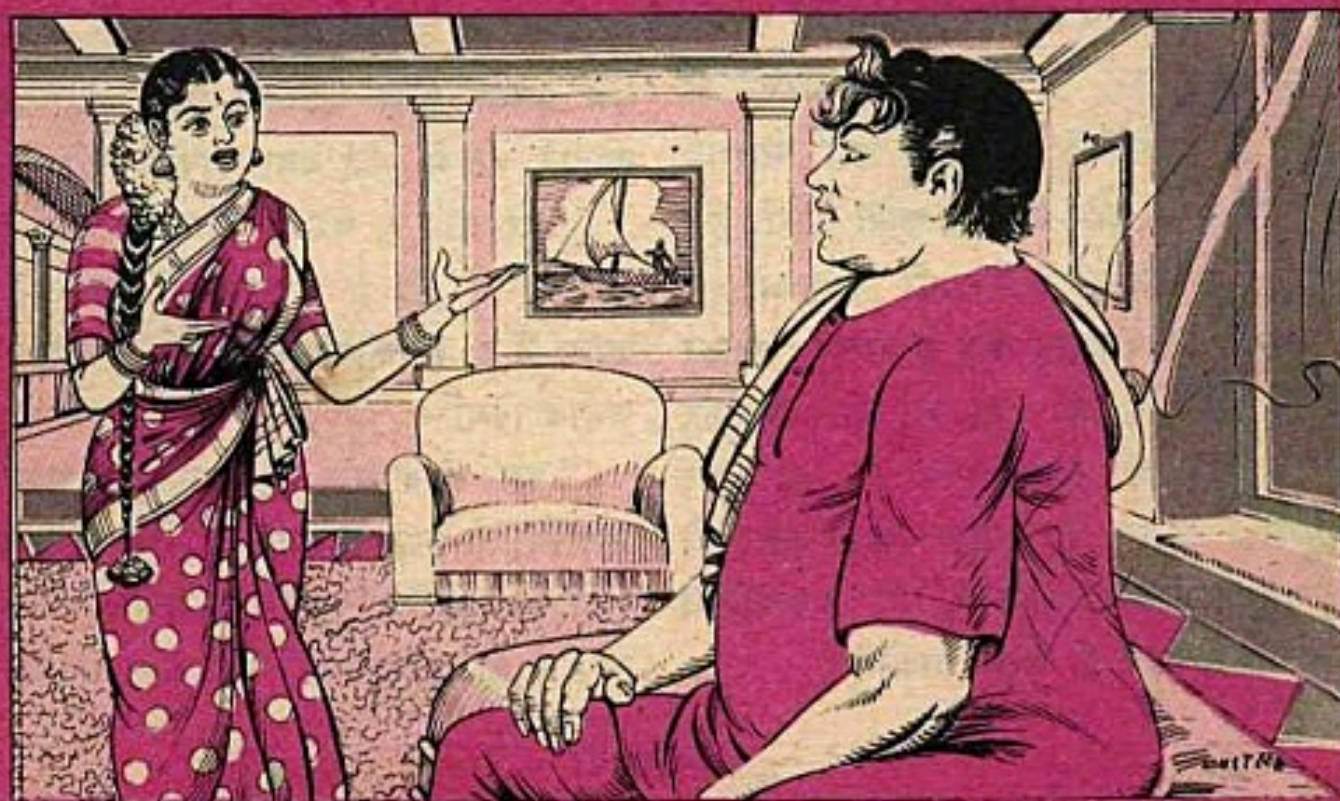
पन्नालाल को अफ़वाहें सुनने की आदत न थी! अपनी पत्नी को समझाते हुये बोला—"उसके घर मेहमान आये हैं। वह मुझसे पूछ कर ही रोज तरकारियाँ ले जाता है। लोगों को इससे क्या मतलब है? तिल का ताड़ बनाकर कहते फिरते हैं। तुम दूसरों की बातों में कभी न आओ।"

एक दिन रंगनाथ खेत से झाबा भरकर तरकारियाँ ले जा रहा था, नीचे गिरकर उसके पैर में मोच आया। वह घर पहुँचा। अपने दस साल के लड़के को बुलाकर बोला—"क्यों रे, ये तरकारियाँ हाट में बेचकर दो रुपये लाओगे?"

लड़के ने कहा—"जरूर लाऊँगा!"

"झाबे का बोझ ज्यादा है! तुम ढो सकते हो?" रंगनाथ ने फिर पूछा।

"कोई बात नहीं!" लड़के ने कहा।

रंगनाथ ने लाचार होकर अपने लड़के को सारी बातें समझायीं कि कौन तरकारी किस दाम पर बेचनी है। फिर झाबा उसके सर पर रखकर हाट में भेजा।

रंगनाथ का लड़का झाबा लेकर आधी ही दूर गया था कि उसकी गर्दन में जोर का दर्द होने लगा। सामने आनेवाले एक आदमी को देख वह पूछ बैठा—"बाबू! झाबा उतार दीजिये।"

वह आदमी और कोई नहीं, पन्नालाल ही था। झाबा उतारते हुये उसने पूछा—"अरे, तुम इतना बोझ उठाकर जाते कहाँ हो? तुम्हारे घर में कोई बड़ा आदमी नहीं है?"

"मेरे बाप के पैर में मोच आ गया है। इसलिए मैं ही ये तरकारियाँ हाट में ले जाता हूँ। इनको बेचना है न?" लड़के ने जवाब दिया।

"इस झाबे को उठाकर हाट तक ले जाओगे, तो तुम्हारी गर्दन में मोच आयेगी। कहो, ये तरकारियाँ तुम कितने में बेचना चाहते हो? मैं ही खरीदूंगा।" पन्नालाल ने पूछा।

"मेरे बाप ने दो रुपये में बेचने को कहा है जी" लड़के ने जवाब दिया।

"दो रुपये में ही देता हूँ। मेरे घर आओ।" यह कहकर पन्नालाल ने खुद तरकारियों का झाबा सर पर उठा लिया। रंगनाथ के लड़के को अपने घर ले जाकर दो रुपये दे भेज दिया।

लड़के ने घर जाकर दो रुपये अपने बाप के हाथ में देते हुये कहा–"तरकारियाँ रास्ते में ही बिक गयीं, किसी मेहरबान आदमी ने सारी तरकारियाँ खरीद कर रुपये दिये।" "कोई धर्मात्मा है!" रंगनाथ ने गहरी साँस ली।

दूसरे दिन रंगनाथ के पैर में पीड़ा और ज्यादा हुई। उसने अपने बेटे को बुलाकर कहा–"अरे, गाँव के बाहर पन्नालाल के बगीचे को देखा है न? वहाँ पर यह झाबा ले जाओ, उनसे कहो कि मैंने तुमको भेजा है। टोकरी-भर तरकारी तोड़कर हाट में बेचो, आज एक रुपया ले आओ! पन्नालालजी तो झाबे-भरकर तरकारियाँ देंगे, लेकिन तुम ढो नहीं सकोगे।"

जब रंगनाथ का लड़का बगीचे में पहुँचा, तब पन्नालाल पौधों को पानी दे रहा था। लड़का उसके पीछे खड़े होकर

बोला–"बाबूजी मेरे बाप रंगनाथ ने मुझे तरकारियाँ लाने भेजा है!"

पन्नालाल ने सर उठा पीछे घूमकर देखा–"अरे, तुम हो।" उसने कहा।

जब उस लड़के को यह मालूम हुआ कि कल इसी आदमी ने उससे तरकारियाँ खरीदी है, तो वह घबराकर टोकरी वहीं फेंककर भाग खड़ा हुआ।

"अरे, सुनो तो!" पन्नालाल चिल्लाता रहा, मगर लड़का भाग गया।

लड़के ने घर पहुँचकर हांपते हुये अपने बाप से कहा–"कल मुझसे तरकारियाँ खरीदकर पन्नालाल ने ही रुपये दिये थे। उनको आज बगीचे में देख भागता आया।"

रंगनाथ का छल प्रकट हो गया; इसलिए वह डर गया। उसकी समझ में नहीं आया कि अब पन्नालाल को चेहरा कैसे दिखायेगा।

इतने में पन्नालाल खुद वहाँ आ पहुँचा।

"क्यों रंगनाथ? तुम्हारे पैर में मोच आया है! अब कैसा है? तुम्हारे मेहमान सब चले गये हैं, क्या?" पन्नालाल ने पूछा।

लंगड़ाते हुए रंगनाथ पन्नालाल के पैरों पर गिरकर रोने लगा–"मेरी अक़्ल घास चरने गयी थी, इसलिए मैंने आपके साथ छल किया। आपका ऋण कैसे चुकाऊँ! समझ में नहीं आता।"

"कोई बात नहीं, रंगनाथ। ग़रीबी सब कुछ कराती है। तुम्हें क्यों परेशान होना है। मेरे बगीचे का काम देखते तुम्हारे खर्च के लिए कुछ तरकारियाँ बेचकर मजे में जिन्दगी बिताओ।" पन्नालाल ने समझाया।

उस दिन से रंगनाथ पन्नालाल के बगीचे में काम करते खूब तरकारियाँ पैदा करने लगा। तरकारियाँ बेचकर जो रुपये मिल जाते, उनमें एक रुपया वह खुद रख लेता और दो-तीन रुपये हर रोज मीनाक्षी के हाथ दे जाता।

# लाखों की बात

उज्जयिनी नगर में वरुणश्रव नामक एक गृहस्थ रहता था। उसके यहाँ थोड़ी-बहुत ज़मीन थी। वह हमेशा कोई न कोई काम करता, दूसरों के भी काम करता और इस तरह थोड़ा-बहुत कमा लेता। उसे सदा यह चिन्ता सताया करती थी कि चाहे ज़िन्दगी-भर भी कमावे, पेट-भरने के लिए काफ़ी हो जाता है, पर कुछ भी बचा नहीं पाता है। उसके बाद उसके बच्चों का क्यों होगा।

अपनी पत्नी से भी हमेशा वह यही कहा करता–"आखिर मैं कुछ बचाये बिना ही मर जाऊँगा।"

"इसके लिए हम क्या कर सकते हैं? जो भाग्य में होगा, वही होगा।" उसकी पत्नी वसुमति समझा देती।

एक दिन उसके घर एक मेहमान आया। पत्नी ने उसे भोजन खिलाया। इधर-उधर की बातों के सिलसिले में वरुणश्रव ने अपनी आदत के अनुसार कहा–"मैं आखिर कुछ बचाये बिना ही मर जाऊँगा।"

ये बातें सुनकर मेहमान बोला–"मैं हस्त-सामुद्रिक जानता हूँ। अपना हाथ बढ़ाओ। मैं कह सकता हूँ कि तुमको क्या क्या मिल सकता है।" मेहमान ने वरुणश्रव के हाथ की परीक्षा की।

अंत में वह बोला–"तुम नाहक़ चिन्ता करते हो। तुम्हारे हाथ में भाग्य की रेखा बड़ी अच्छी है। लेकिन वह कुछ विलंब से शुरू होती है। शायद अगले महीने से तुम्हारी हालत सुधर सकती है।"

"यक़ीन कर सकता हूँ?" वरुणश्रव ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"मैं तुमको खुश करने के लिए नहीं कहता हूँ। तुम अपनी आयु के पूरा होने के पहले दो लाख रुपये बचा पाओगे। इसमें

विनोदकुमार

ज़रा भी ग़लत नहीं है।" मेहमान ने कहा।

निराश वरुणश्रव को मेहमान की बातों पर ज़रा भी विश्वास न आया। लेकिन एक महीने के गुज़रने के बाद सचमुच उसकी आमदनी बढ़ गयी। पहले जहाँ एक रुपया मिलता था, अब वहाँ दो रुपये मिलने लगे। पहले की तरह सारी कमाई खर्च न होती थी, कुछ बच जाती थी।

वरुणश्रव की निराशा जाती रही। वह अब हमेशा खुश रहने लगा। अपनी कमाई से जो कुछ बचता उसे वह डिबिया में डालता गया। पर वसुमति हमेशा किसी चिन्ता से परेशान रहने लगी। वह रोज़ डिबिया खोलकर रुपये गिनती रहती थी।

कुछ साल बीत गये। उज्जयिनी नगर में एक परदेशी आया। वह एक कुशल शिल्पी था। मगर वह बहुत ही ग़रीब था। अपने देश में शिल्प-कला का आदर न होते देख पेट भरने के ख्याल से उज्जयिनी में आया। उज्जयिनी नगर के राजा को भेंट देने के लिए वह अपने साथ एक शिल्प भी ले आया। परंतु उसके फटे-पुराने कपड़े और गंदे शरीर को देख पहरेदारों ने उसे राजमहल के अन्दर जाने से रोका और

भगाया। वह शिल्पी बड़ी निराशा और भूख से पीड़ित हो वरुणश्रव के घर आया।

वरुणश्रव ने शिल्पी के नहाने का इंतज़ाम किया, अच्छे कपड़े दिये। खाना खिलाया, तब उसका सारा हाल जाना। शिल्पी ने अपनी थैली में से एक अच्छा शिल्प निकाल कर वरुणश्रव को दिखाया।

"ऐसे शिल्पों को हमारे राजा बहुत पसंद करते हैं। वे इस शिल्प को देख बहुत खुश होंगे। मैं इस शिल्प के लिए राजा से इनाम वसूल कर सकता हूँ।" वरुणश्रव ने कहा।

"देखो, महाशय! यह काम जरूर कर दो। इनाम में से आधा हिस्सा मैं तुमको दूंगा। इसमें मुझे बड़ी खुशी ही होगी।" शिल्पी ने कहा।

दूसरे दिन वरुणश्रव अच्छी पोशाक पहने, शिल्प को हाथ में लिये, राजा के दर्शन करने निकला। बड़ी आसानी से उसे राजा के दर्शन हुए। उसने राजा के सामने शिल्प रखकर कहा–"परदेशी शिल्पी ने कल आपको यह शिल्प भेंट देने का प्रयत्न किया। वह बहुत ग़रीब है। इसलिए उसे आपके दर्शन नहीं हुए। मैं उसकी तरफ़ से यह शिल्प आपको भेंट

करता हूँ। मुझे क्षमाकर कृपा करके स्वीकार कीजिये।"

राजा उस शिल्प को देख बहुत खुश हुए और उसकी बड़ी तारीफ़ करते हुए बोले-"शिल्पी को एक लाख और शिल्प के लिए एक लाख-कुल दो लाख इनाम देते हैं।"

राजभट दो लाख रुपये लेकर वरुणश्रव के साथ उसके घर आये। उस इनाम को देख शिल्पी की आँखों से आनंदाश्रु निकल आये। वह बोला-"यह इनाम तुम्हारे कारण मिला है। इसलिए इसमें आधा हिस्सा तुम्हारा है। ले लो।"

वसुमति ने घबड़ाहट-भरे स्वर में अपने पति से कहा-"नहीं, न लीजिये। आधा लाख मात्र लीजिये। काफ़ी है।"

वरुणश्रव और शिल्पी भी वसुमति की घबराहट देख चकित हो गये।

"एक लाख रुपये लेने से क्यों डरती हो?" वरुणश्रव ने अपनी पत्नी से पूछा।

"क्या आप यह बात भूल गये? आपका हाथ देखकर उस मेहमान ने क्या कहा था? उसने कहा था न कि आपकी जिन्दगी के खतम होने के पहले दो लाख रुपये जमा करेंगे। मेरा काम यह है कि मैं यह देखूं, कभी दो लाख रुपये पूरे न हो जावें। जो धन जमा करते हैं, वह क्या कभी प्राण के समान हो सकता है? मैंने कभी यह धन नहीं चाहा था। उस धन से बढ़कर मेरे लिए आपके प्राण ही अधिक हैं।" वसुमति ने कहा।

वसुमति की बात शिल्पी को एक सबक़ बन गयी। उसने राजा के द्वारा प्राप्त धन में से कुछ अपनी जरूरत के लिए रखकर बाक़ी ग़रीबों में बांट दिया।

वरुणश्रव और वसुमति भी उस दिन से धन कमाने की चिन्ता छोड़कर सुख से जिन्दगी बसर करने लगे।

# हार में जीत

सुवर्णपुर का युवराज विक्रम बहुत सुंदर था। अड़ोस-पड़ोस के राज्यों के राजाओं ने अपनी कन्याओं के साथ विक्रम की शादी करनी चाही। ऐसे प्रयत्न करनेवालों में कई राजा निकट रिश्तेदार, बलवान और मित्र भी थे।

इस उलझन से बचने और अपनी पसंद की कन्या के साथ विवाह करने के लिए विक्रम ने एक उपाय सोचा। उसने सोच-समझकर एक विज्ञापन तैयार किया और चारों तरफ़ के राजाओं के पास एक विज्ञापन भेजा। उसमें यों बताया :–

"मुझसे शादी करनेवाली कोई भी राजकुमारी तीन प्रश्न पूछ सकती है। उनमें अगर मैं किसी एक प्रश्न का भी जवाब न दे सकूंगा तो मैं उसके साथ विवाह करूँगा। जो इस नियम को मानती हैं, वे आवेदन कर सकती हैं।"

यद्यपि यह विज्ञापन कुछ विचित्र था, फिर भी विक्रम से शादी करनेवाली राजकुमारियों के दिल में आशा जगायी। अनेक राजकुमारियों ने कई कठिन प्रश्न सोचकर, विक्रम के नाम एक शुभ घड़ी में स्वागत-पत्र भेजे।

विक्रम ने एक-एक राज्य में जाकर राजकुमारियों को देखा, पर वे उसको पसंद न आयीं। उनके प्रश्नों का कुछ न कुछ जवाब देकर यह कहते वापस लौटा कि "मैं हार नहीं गया हूँ।" वहाँ से फिर दूसरी जगह जाता।

इस प्रकार कई राजकुमारियों को उत्तर देकर आखिर विक्रम चन्द्रदेश पहुँचा। चन्द्रदेश की राजकुमारी चंद्रिका ने भी उसे निमंत्रण भेजा था।

चंद्रिका को देखते ही विक्रम के मन में उसके साथ शादी करने की इच्छा हुई।

राजकुमारी तीन प्रश्न पूछने के लिए जब उसके सामने आ बैठी, तब विक्रम ने उससे कहा–"संकोच न करो, कठिन से कठिन प्रश्न पूछ सकती हो!"

"मेरा पहला प्रश्न है: मानव को पूर्णता, परिपूर्णता और संपूर्णता की सिद्धि कैसे होगी?" चंद्रिका ने पूछा।

"विवाह से पूर्णता, विद्या, बुद्धि और लोकानुभव के साथ परिपूर्णता तथा मृत्यु के साथ संपूर्णता की सिद्धि मानव को होगी!" विक्रम ने समाधान दिया।

"दूसरा प्रश्न: धन और अधिकार के साथ कौन वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती है?" चंद्रिका ने फिर पूछा।

"वैसे तो अनेक हैं; पर मैं एक-दो उदाहरण देता हूँ–दुहे हुए दूध को वापस नहीं भेजा सकता, पकाये गये भात को चावल नहीं बनाया जा सकता।" विक्रम ने कहा।

"अंतिम प्रश्न: मूर्ख के साथ पाला पड़े तो क्या करना होगा?" चंद्रिका ने पूछा।

विक्रम ने इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं दिया और वह मौन रहा।

चन्द्रदेश के राजा ने माना कि उसकी पुत्री जीत गयी है। इसलिए उसने विक्रम से कहा कि वह राजकुमारी के साथ विवाह करे। विक्रम ने कोई प्रतिवाद नहीं किया।

विवाह के बाद चंद्रिका ने अपने पति से पूछा–"आप तीसरे छोटे प्रश्न का जवाब न देकर क्यों हार गये हैं?"

"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मौन रहना ही है। वह समाधान मुंह से देने के बदले संकेत से दिया है। इससे मेरा लाभ यह हुआ कि तुमको पत्नी के रूप में पा सका।" विक्रम ने जवाब दिया।

# मच्छरों का शेर

जौनपूर से दस मील की दूरी पर 'महोबा' नामक छोटा-सा गाँव है। उस में गोरख प्रसाद नामक एक ग्वाला रहता था।

गोरख प्रसाद अक़्लमंद था, लेकिन पढ़ा-लिखा न था। इसलिए उसकी अक़्ल की कोई क़ीमत न रही। उसका बाप बचपन में ही मर गया था। माँ हमेशा बीमार रहती, इस कारण परिवार का भार उसी पर आ गया। वह मोटा-ताजा था। जिस किसी से भी हिम्मत के साथ बात कर सकता था।

बीस साल की उम्र तक गोरख प्रसाद को ग्वाले सब "मच्छरों का शेर गोरख" पुकारते थे। क्योंकि मच्छर मारने में उसे बड़ा शौक़ था।

उन्हीं दिनों में जौनपूर के जंगलों में एक शेर आया। वह रोज़ भेड़ों को मार खाता था। जौनपूर का राजा कई बार उस शेर का शिकार करने गया, लेकिन कभी उसका पता न लगा। इसलिए उसने ढिंढोरा पिटवाया—जो शेर को मारेगा, उसे खूब इनाम दिया जायगा।

ढिंढोरे को सुनते ही गोरख के दोस्तों ने उसका मज़ाक उड़ाया—"मच्छरों का शेर गोरख, तुम शेर को क्यों नहीं मारते? तुम्हारा नाम 'शेर गोरख बहादूर' हो जाएगा।"

दोस्तों का मज़ाक सुनने पर गोरख के दिमाग़ में एक बात सूझी। उस दिन रात को वह सिर्फ़ अपनी माँ से विदा लेकर जौनपूर चला गया। क़िले के दर्वाज़े पर पहरेदारों ने उसे रोक कर पूछा—"तुम कौन हो? किस काम से आये हो?"

"मैं शेर को मार सकता हूँ। मुझे राजा के पास जाने दीजिये!" गोरख ने जवाब दिया। गोरख की बातें सुन कर

खाना देंगे तो फिर खोयी हुई ताक़त पाकर शेर को मार सकता हूँ।" गोरख ने समझाया।

राजा ने गोरख के भोजन का इंतज़ाम किया। गोरख रोज़ एक बकरी और दस शेर दूध लेता रहा। खूब क़सरत करते मजे में दिन काटने लगा।

एक महीना बीत गया। राजा ने खबर भेजी कि पता लगाओ, गोरख अब तक क्यों शेर का शिकार खेलने नहीं गया। गोरख ने बताया—"मुझे एक बंदूक़, कुछ कार्तूस और कुछ रुपये दिलवा दें तो मैं आज ही शेर मारने चला जाऊँगा।" गोरख ने जो कुछ माँगा था, राजा ने सब दिलाया।

गोरख किसी से कुछ कहे बिना सीधे अपने घर चला गया और अपनी माँ से बोला—"हमें दूसरे गाँव जाना है। जल्द तैयार हो जाओ।" माँ ने मिट्टी के बर्तनों में भात, दही, दूध और पानी भरकर सर पर रख लिया। गोरख बंदूक़, कार्तूस, कटार, और कुल्हाड़ी लेकर रवाना हुआ। उन लोगों ने सोचा कि सवेरा होने तक जंगल में एक पेड़ पर रहकर, दूसरे गाँव चले जायें! यह सोच कर दोनों कुछ दूर और आगे बढ़े, तब उन्हें रास्ते में एक

व सब अचरज में आ गये और वे गोरख को राजा के पास ले गये।

"महाराज, मुझे मच्छरों का शेर गोरख कहते हैं। मैंने कई जानवर मारे हैं। आप आज्ञा देंगे तो मैं शेर को मार सकता हूँ।" गोरख ने राजा से निवेदन किया।

"अच्छी बात है। लेकिन शेर मारने वाले को जंगल में जाना चाहिये था, यहाँ पर क्यों आये हो?" राजा ने पूछा।

"आप का कहना ठीक है, महाराज! लेकिन मैं ग़रीब हूँ। इधर बीमार पड़ गया था। इसलिए कमज़ोर हो गया हूँ। महाराज मेहर्बानी कर के दस दिन बढ़िया

बड़ा बरगद का पेड़ दिखायी दिया। गोरख ने एक डाल पर अपनी माँ को बिठाया, उसी डाल पर बर्तनों को लटका दिया और गोरख खुद दूसरी डाल पर जा बैठा।

संयोग से शेर उसी ओर आ निकला। उसने गंध ली कि पेड़ पर आदमी हैं। शेर ने पेड़ पर उछलने की कोशिश की। उछलते समय बर्तनों से टकराया और बर्तन शेर के सर पर जा गिरे, भात, दही, और दूध शेर की आँखों में जा गिरे!

यही अच्छा मौक़ा समझकर गोरख ने उसपर बंदूक़ चलाना चाहा। मगर इतने में गोरख की माँ का हाथ काँप गया और वह सीधे शेर पर जा गिरी।

शेर घबरा उठा। अंधा-धुंध दौड़ते नज़दीक के एक सूखे कुएँ में जा गिरा। अब दर्द के मारे शेर गरजने लगा। गोरख की माँ बेहोश हो गयी। शेर गरजता ही रह गया। गोरख को मालूम न था कि शेर कुएँ में जा गिरा है। इसलिए वह पेड़ से उतर आने की हिम्मत न कर सका।

आखिर सवेरा हो गया। गोरख पेड़ से उतर आया और उसने शेर की आवाज सुनकर कुएँ में झाँक कर देखा। शेर कुएँ में असहाय पड़ा था। इसलिए गोरख ने गोली चलाकर शेर को मार डाला। वह सीधे दूसरे गाँव में पहुँचा, एक बैल-गाड़ी पर शेर को लाद कर जौनपूर गया। राजा के पास खबर भेजी।

शेर को मारने पर राजा बहुत खुश हुआ। उसने एक गाँव गोरख को इनाम में दिया। गोरख और उसकी माँ को भी राजा ने पुरस्कार दिये। अब गोरख 'मच्छरों का शेर गोरख प्रसाद बहादूर' नाम से बहुत मशहूर हुआ और अपनी ज़िंदगी आराम से काटने लगा।

# आँख के पंख

आनन्दपुर के महाराजा के चार पत्नियाँ थीं। चारों सुंदर थीं। लेकिन एक एक में एक विशेषता थी। एक के केश सुंदर थे, दूसरी की नाक सुंदर थी, तीसरी रानी की आँखें बहुत सुंदर थीं। चौथी रानी के गाल खूबसूरत थे। राजा चारों रानियों से बराबर प्यार करता था। चारों रानियों के बच्चे भी थे।

एक दिन महाराज अपनी सुंदर आँखों वाली रानी के साथ महल की छत पर टहल रहा था। एक पक्षी उड़ते हुये उस ओर आते दीख पड़ा। राजा उस पक्षी को ध्यान से देखने लगा!

"उस कौए को क्यों ऐसे ध्यान से देखते हैं? वह तो भद्दा है, क्या वह भी देखने लायक़ है?" सुंदर आँखोंवाली रानी ने राजा से पूछा।

"वह कौआ मालूम नहीं होता, गरुड़ होगा!" राजा ने कहा।

"वह सौ फ़ी सदी कौआ ही है, गरुड़ नहीं।" रानी ने फिर कहा।

"गरुड़ ही है, इधर ही आ रहा है। जल्द मालूम हो जायगा।" राजा ने समझाया।

"वह कौआ न हो तो मैं जंगल में चली जाऊँगी। कौआ हो, तो क्या आप जाने को तैयार हो जायेंगे?" रानी ने चुनौती दी। राजा ने हँसकर जवाब दिया—"ऐसा ही करूँगा!"

थोड़ी देर में वह पक्षी नजदीक आया और बोला—"कृष्ण!" वह गरुड़ पक्षी ही था।

"देखा? तुम्हारी आँखें तो जरूर सुंदर हैं, लेकिन तुम्हारी दृष्टि उतनी अच्छी नहीं। जल्दबाजी में आकर कभी होड़ न

शोभाकांत दास

लगाओ! अब तुम हार गयी हो, मैं जीत गया।" यह कह कर राजा महल से नीचे उतरकर चला गया।

तब तक दूर पर बैठा पालतू तोता उड़कर आया और यह कहकर फिर उड़ गया–"तीसरी रानी होड़ लगाकर हार गयी न?"

दाँव में हार जाने के कारण अपमान से तीसरी रानी दबी जा रही थी, अब उसे यह शंका भी सताने लगी कि यह तोता यह बात बाक़ी तीनों रानियों से बता देगा! इसलिए उस दिन रात को तीसरी रानी अपनी दो साल की लड़की तेजस्विनी को राजमहल में छोड़कर किसी से भी बिना कहे, एक दासी को साथ ले जंगलों में चली गयी।

दूसरे दिन अंत:पुर में रानी को न पाकर सब परेशान हो गये। अकेले राजा ने ही असली बात जान ली और अपनी बात में पक्के होने के कारण अपनी रानी की मन ही मन वह तारीफ़ करने लगा। फिर भी राजा ने और लोगों को समझाते हुये कहा–"तुम लोग घबड़ाओ नहीं, वह जरूर वापस आयेगी।" राजा का यक़ीन था कि उसकी रानी जंगलों में ज़्यादा दिन न रह सकेगी।
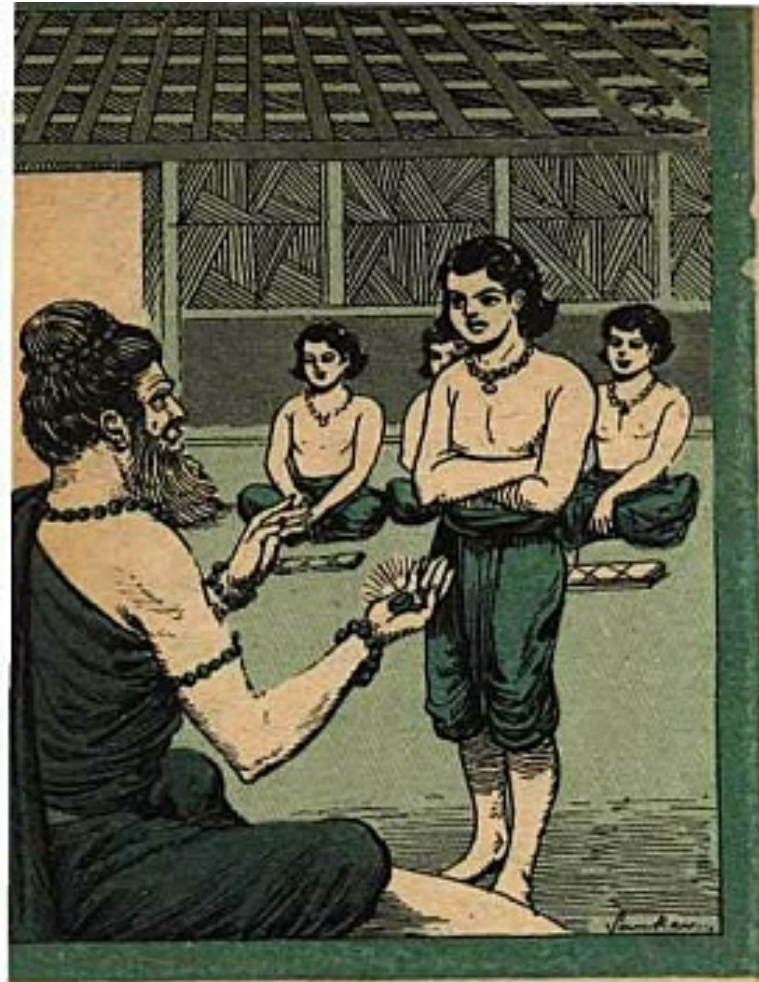
राजा ने इस बात में भूल ही की। तीसरी रानी जंगल में बहुत दूर चली गयी और एक जंगली गाँव में एक बूढ़ी को थोड़ा धन देकर उस के घर में रहने लगी। गाँववालों से रानी ने बताया कि उसके कोई नहीं है, वह अनाथ है, अब वह इसी गाँव में रहेगी।

तीसरी रानी जब महल से निकली तब वह गर्भवती थी। ठीक समय पर उसके एक बच्चा हुआ। रानी ने उसका नाम 'तेजसिंह' रखा। दासी उन दोनों की सेवा-शुश्रूषा करने लगी।

पाँच साल बीत गये! बूढ़ी मर गयी। वह घर अब तीसरी रानी का हो गया। तेजसिंह बढ़ने लगा। जब इसके पाँच साल पूरे हुये, तभी रानी ने दासी के साथ तेजसिंह को नगर में भेजा और गुरुकुल में उसकी पढ़ाई-लिखाई का इंतज़ाम किया।

तेजसिंह गुरु के पास मन लगाकर पढ़ने लगा। छुट्टी के दिनों में वह अपनी माँ के पास आ-जाया करता था। अब उसके तेरह साल पूरे हो गये।

एक दिन सुबह तेजसिंह नदी में स्नान करने गया। उसे नदी के किनारे तीन रंगोंवाला एक रत्न मिला। उसने रत्न को लाकर अपने गुरु के हाथ में सौंप दिया। गुरुजी ने सोचा कि यह रत्न राजाओं के योग्य है। इसे मैं अपने पास रख लूँ तो ज़रूर किसी न किसी तरह राजा को मालूम हो जाएगा। यह सोचकर गुरुजी ने वह रत्न राजा को भेंट किया।

"यह आपको कैसा मिला?" राजा ने गुरुजी से पूछा।

"मेरे शिष्य तेजसिंह को नदी के किनारे मिला है।" गुरु ने जवाब दिया।

राजा ने गुरुजी को सौ स्वर्णमुद्राएँ दीं और कहा—"आप का शिष्य तेजसिंह भी पुरस्कार पाने योग्य है। उसे मेरे पास भिजवा दीजिये।"

तेजस्वती अब सोलह साल की युवती हो गयी थी। राजा उसका विवाह करना चाहता था। विवाह के लिए अच्छे-अच्छे गहने भी बनवाना चाहता था। इसलिए सुनार को बुलवाकर आदेश दिया कि वह इस तीन रंगोंवाले रत्न से एक बढ़िया चंद्रहार तैयार करे।

इस बीच में गुरुजी घर पहुँचे, तेजसिंह को बुलाकर बोले—"तुमको जो रत्न मिला था, वह राजा को बहुत पसंद आया। वे तुमको बुलाते हैं। चलो!"

"मैं नहीं आ सकता, गुरुजी! मेरी माँ ने यह आदेश दिया है कि उनकी आज्ञा के बिना मैं कहीं भी न जाऊँ। उनकी अनुमति मिलने पर ही मैं राजा के पास आ सकता हूँ।" तेजसिंह ने जवाब दिया।

गुरुजी ने राजा के पास जाकर यही बात कही।

राजा ने सोचा—तेजसिंह की माँ जंगल में अमुक गाँव में होगी। यह सोचकर राजा ने अपने सिपाहियों को यह आदेश देकर भेज दिया कि वे तेजसिंह की माँ से राजा की ओर से यह पूछे 'आपके लड़के को राजमहल में जाने की अनुमति दीजिये'।

सिपाहियों ने आकर राजा की इच्छा बतायी। पर तीसरी रानी ने साफ़

जवाब दिया—"हम अरण्यवासी हैं। मेरा पुत्र राजमहल में क़दम न रखेगा।"

सिपाहियों ने यह समाचार राजा को सुनाते हुए कहा—"महाराज! वह कोई राजपरिवार की स्त्री मालूम होती है, मांमूली औरत नहीं।"

राजा को संदेह हुआ कि वह उसकी तीसरी पत्नी नेत्रसुंदरी है। तुरंत राजा तेजस्वती को साथ ले, तीसरी रानी के निवास की ओर निकला। राजा के साथ अंत:पुर का तोता भी रवाना हुआ।

चौदह साल के बीत जाने पर भी राजा ने नेत्रसुंदरी को देखते ही पहचान लिया।

"तुम कैसी हठी हो! आज तक अरण्यवास क्यों करती रही? यह लड़का कब पैदा हुआ? हम को कोई समाचार तक नहीं दिया। क्या हम को बिलकुल भूल गयी?" राजा ने अपनी तीसरी पत्नी से पूछा।

"यहाँ आने के छः महीने बाद यह लड़का पैदा हुआ। मैं दाँव में हार गयी। जंगल में जाने की जो बात कही, वह बात मैंने रख ली।" तीसरी रानी ने कहा।

"तुमने जंगल में जाने की बात ज़रूर कही थी, लेकिन जंगल में रहने की बात नहीं! कैसी बे अक़लमंद हो!" तोते ने मज़ाक किया।

"तोते ने बड़ा अच्छा कहा। तुम्हारी लड़की की शादी जल्द होनेवाली है। तुम अपनी बात में पक्की रही। अब घर चलो। मैं मानता हूँ कि तुम जीत गयी हो।" राजा ने कहा।

नेत्रसुंदरी का दिल पिघल गया, वह अपने पति के साथ राजधानी में चली आयी। राजा ने अपने पुत्र तेजसिंह को गुरुकुल से घर बुलवा लिया। सब सुख से दिन बिताने लगे।

# अनोखा नाखून

अकबर के राज्य-काल में एक राजा युद्ध में घायल हुआ। उस वक़्त उस की एक उंगली का नाखून निकल गया। वैद्यों ने इलाज किया। घाव तो भर गया, लेकिन उंगली पर का नाखून नहीं निकला।

राजा को बहुत गुस्सा आया। उसने सभी दरबारी वैद्यों को क़ैद कराया और राज्य-भर के वैद्यों को चेतावनी दी। कोई भी वैद्य राजा के नाखून को फिर न उगा सका। इसलिए उन सब को भी राजा ने जेलखाना में बंद कराया। कुछ वैद्य देश छोड़कर भाग गये। कुछ लोगों ने इलाज बंद करने की घोषणा की। ऐसे वैद्य अपने रिश्तेदार और बंधुओं को दवा देने से भी डरते थे। क्योंकि राजा को खबर मिलते ही वे उन वैद्यों को भी क़ैद करा देते थे। वैद्य और राज्य के लोग भी बहुत परेशान थे। प्रजा की बीमारियों का इलाज करनेवाला एक भी वैद्य न रहा। इसलिए सारे देश में हलचल मच गयी।

अकबर बादशाह को मालूम हुआ कि फ़लाने देश के राजा ने राज्य-भर के वैद्यों को जेलखाने में डाल दिया है, कुछ लोग जेलखाने की सज़ा से डरकर भाग गये हैं, और देश के बीमारों की हालत बड़ी खराब है। अकबर ने बीरबल को बुलवाकर सारी बातें सुनायीं और उसे आदेश दिया– "तुम क़ैद में सड़नेवाले सभी वैद्यों को छुड़ाने का कोई उपाय करो।"

बीरबल वैद्य का वेष धारण कर उस राज्य में गया, राजधानी के एक गृहस्थ के घर में जा ठहरा। उसने उस घर के मालिक से कहा–"अजी! मैं एक घन वैद्य हूँ। मुझे राजा के दर्शन करा सकते हो?"

"तुम हमारे राज्य में क्यों आये? हमारा राजा वैद्यों से बहुत नाराज़ है।

सब वैद्यों को उसने जेलखाने में बंद कराया है। इस देश में अपने को वैद्य बतलाना भी बड़ा क़सूर है। उल्टे तुम राजा के दर्शन भी करना चाहते हो? मेरी बात सुनो, ऐसा काम भूल से भी न करो।" गृहस्थ ने कहा।

गृहस्थ की बातों की परवाह किये बिना बीरबल खुद दूसरे दिन राजा के दर्शन करने गया।

राजा ने बीरबल को देख पूछा—"तुम अपने को वैद्य मानते हो?"

"जी हाँ, महाराज! मुझ से बड़ा वैद्य दुनिया-भर में न होगा।" बीरबल ने कहा।

"ऐसी बात हो तो मेरी इस उँगली पर नाखून उगा दो!" राजा ने बीरबल को अपनी उँगली दिखायी।

"यह कौन बड़ी बात है? मैं दूर देश से आता हूँ। मेरे पास इलाज के लिए जरूरी जड़ी-बूटियाँ नहीं हैं। मैं नहीं जानता कि वह चीज आपके देश में मिलती है या नहीं।" बीरबल ने कहा।

"मैं आज्ञा देता हूँ, तो कोई भी चीज़ मिनटों में मिल जाएगी। तुमको कौन चीज़ चाहिए?" राजा ने बीरबल से पूछा।

"तब तो दस तोले गूलर के फूल मँगवा दीजिये। एक महीने के अंदर

मँगवा देंगे तो मैं बाक़ी चीजें तैयार कर रखूंगा। एक महीने के अंदर नहीं आये तो बाक़ी चीजें खराब हो जाएँगी। इसलिए आप वचन दीजिये कि जरूर गूलर के फूल मँगवाएँगे।" बीरबल ने कहा।

"एक महीने की भी जरूरत नहीं, पंद्रह दिन में मँगवाये देता हूँ।" राजा ने कहा।

"नहीं मँगवाएँगे तो?" बीरबल ने फिर ज़ोर देकर पूछा।

"तुम जो कहोगे, वही करूँगा।" राजा ने जवाब दिया।

राजा नहीं जानता था कि गूलर के फूल नहीं होते। इसलिए उसने अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि १५ दिनें के अन्दर अन्दर गूलर के फूल मँगवा दें।

एक महीना बीत गया, पर बीरबल को गूलर के फूल न मिले। इसलिए महीना बीतने पर बीरबल ने राजा से पूछा— "महाराज! एक महीना बीत गया। अभी तक गूलर के फूल नहीं आये।"

राजा मंत्रियों पर आग-बबूला हो उठा।

मंत्रियों ने सारा इल्ज़ाम अपने भटों पर डाल दिया।

"तब तो क्या किया जाय?" राजा ने बीरबल से पूछा।

"सभी वैद्यों को जेलखाने से रिहा कर दिया जाए। आपने वचन दिया था कि गूलर के फूल नहीं मँगवाएँगे तो मैं जो कहूँगा, वही करेंगे।" बीरबल ने याद दिलाया।

राजा ने सभी वैद्यों को रिहा करवा दिया।

बीरबल की युक्ति पर सभी वैद्य बहुत खुश हुए और सब ने यथाशक्ति पुरस्कार देकर बीरबल को भेज दिया।

# लंगड़ा बंदर

एक गाँव में माँ-बेटे थे। माँ ने बड़े लाड़-प्यार से लड़के को पाला-पोसा। लड़का बड़ा तो हो गया, लेकिन बेवकूफ़ निकला। वह माँ की रत्ती भर भी मदद न कर पाया। माँ मन ही मन कुढ़ने लगी कि यह लड़का अपनी ज़िन्दगी कैसे काट लेगा?

एक दिन उनके घर के पास एक मदारी आया। वह बंदर से तरह-तरह के काम कराने लगा। मदारी के कहने से वह बंदर चला जाता है, उसके बुलाने से आता है, कोई चीज़ लाने को कहे तो लाता है, देने को कहे तो देता है। झाड़ू हाथ में देकर झाड़ू देने को कहे तो झाड़ू देता है। तरह-तरह के काम दिखाने के बाद वह सब के पास जाता और लोगों से पैसा माँगता। आखिर उसने बेवकूफ़ लड़के के पास जाकर हाथ फैलाया। उस आवारे ने बंदर के पैर पर अपने हाथ की लाठी से ज़ोर से मार दिया। बंदर का पैर टूट गया।

मदारी नाराज़ हुआ और बोला—"तुमने मेरे बंदर का पैर तोड़ दिया। इसकी क़ीमत तीन रुपये देकर इसे तुम्हीं रख लो।"

लाचार होकर आवारे की माँ ने तीन रुपये देकर बंदर को ले लिया।

गाँववालों ने सोचा, इस ग़रीबिन ने अपने लड़के को बंदर ख़रीदकर दिया है। हम क्या इससे कम हैं? गाँव के कुछ लोगों ने मदारी के सब बंदरों को ख़रीद लिया।

लंगड़ा बंदर गाँव-भर में बहुत मशहूर हो गया। उसे जो भी काम बता दो, लंगड़ाते-लंगड़ाते कर देता। इसे देखकर आवारा भी छोटे-मोटे काम करने लगा। बंदर मूसल लेकर धान कूटता; चक्की के

भोलानाथ तिवारी

पास बैठकर आटा पीसता; माँ इसे देख अपने आवारे बेटे से कहती–'देखा, बेटा! यह बंदर कैसा अच्छा काम करता है! तुमसे यही अच्छा है!' ये बातें सुनकर आवारा जोश में आता और बंदर को भगाकर वही काम कर देता।

बंदर की देखा-देखी अपने बेटे में जोश आते देख माँ एक दिन बोली–"बंदर बेटा! तुम और भाई दोनों जंगल में जाओ! देखें, कौन ज्यादा लकड़ी लाता है!"

यह बात बंदर की समझ में आयी। वह तुरंत जंगल की ओर रवाना हुआ। आवारा भी उसके पीछे-पीछे जंगल की ओर जाने को तैयार हुआ।

जंगल में बंदर सूखी लकड़ियों को चुन-चुनकर एक जगह इकट्ठा करने लगा। इतने में कहीं से एक आदमी आया, चारों तरफ़ देखा, वहाँ पर किसी को न देख गड्ढा खोदा, रुपयों की थैली उसमें गाड़कर चला गया।

उस आदमी के जाते ही बंदर ने गड्ढा खोद कर थैली निकाली, घर लाकर माँ के सामने रख दी।

बंदर के लायी थैली देख माँ अचरज में आ गयी। माँ ने उसमें से केवल दो रुपये
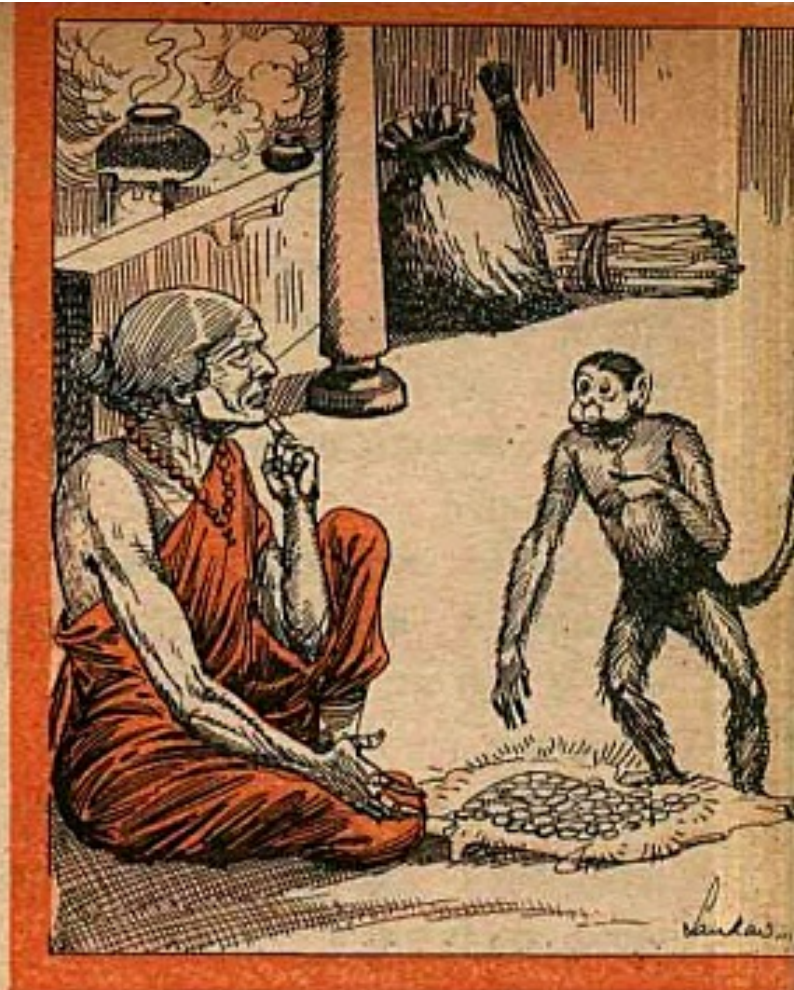
खर्च के लिए निकाले, और बाक़ी रुपये छिपा दिये।

शाम को आवारा एक लकड़ी की गठरी लेकर घर लौटा। आते ही अपनी माँ से पूछा–"माँ क्या बंदर लौटा है, क्या वह मुझसे भी बड़ी गठरी लाया है?"

"वह तो कभी का आ गया है, बेटा! लकड़ी क्या, उसे बेचकर दो रुपये भी लाया है। चाहे तो देख लो।" यह कहते माँ ने दो रुपये दिखाये।

आवारे के मुँह पर काटो तो खून नाहीं; उसे रोना आया–"माँ, तुम ने

मुझे बंदर से भी गया-बीता बनाया। आज से तुम उसे कुछ भी काम न बताओ। सब काम मुझे ही बता दो। देखोगी, मैं कितना अच्छा कर सकता हूँ।" उसने माँ से कहा।

"तुम मेरे सारे काम कर दोगे तो मैं बंदर से क्यों कराऊँगी? बेटा! आज से तुम्हीं घर के सारे काम करो।" माँ ने कहा।

उस दिन से आवारा सभी काम खुद करने लगा। कुछ ही दिनों में वह एक लायक़ आदमी बना।

इस बीच में यह ख़बर सारे गाँव में फैल गयी कि लंगड़ा बंदर जंगल से लकड़ी लाकर बेचता है और पैसे अपनी मालिकिन को देता है। बंदर जो रुपयों की थैली लाया था, वह किसकी थी, पता न लगा। इसलिए बूढ़ी माँ उसमें से एक एक रुपया निकालकर खर्च करती, कोई पूछता, तो बता देती—"तुम लोग नहीं जानते? मेरा बंदर जंगल से लकड़ी काट कर लाता है, रास्ते में बेचकर पैसे लाता है। ऐसा एक दिन भी नहीं जाता, जिस दिन वह कम से कम दो रुपये न लाता हो। उन्हीं रुपयों से तो हमारा गुज़ारा होता है! नहीं तो हमारे घर धरा ही क्या है?"

"हमने भी बंदर ख़रीदें! क्या फ़ायदा? उनको खिलाते-पिलाते हैं, मगर एक पैसे का लाभ नहीं पाया। हम भी बंदरों को लकड़ी बीनना और इकट्ठा करना सिखला देंगे।" गाँववालों ने सोचा।

वे लोग ज्योंही बंदरों को जंगल में ले गये, त्योंही वे पेड़ों पर चढ़कर, एक पेड़ से दूसरे पर कूदते, अपने मालिकों की आँखों से ग़ायब हो गये। शाम तक वे लोग अपने बंदरों के लौटने का इंतज़ार करते रहें, पर उनके न लौटते देख हाथ मलकर पछताने लगे।

# सच झूठ

वलभी नगर व्यापार के लिए जब प्रसिद्ध था, उन दिनों में कई देशों के लोग वहाँ पर आया करते थे। एक बार दक्षिण से एक आदमी उस नगर में आया। उसके पास पाँच सौ रुपये थे। सारे नगर में वह पूछताछ करता रहा कि पाँच सौ रुपयों से व्यापार कैसे करे।

एक औरत को यह बात मालूम हुई और वह उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुये बोली–"मेरे रुपये छीनकर व्यापार करने वाले हो? मेरे पाँच सौ रुपये मुझे दे दो।"

दक्षिण देश का आदमी अचरज में आ गया और बोला–"मैं तुम्हारे रुपये क्या जानूँ? तुम कौन हो? मैं नहीं जानता!"

भीड़ जमा हो गयी। कोई समझ न सका कि कौन झूठ बोलते हैं।

"रास्ते में झगड़ते क्यों हो? कचहरी में जाओ।" एक ने सलाह दी।

वह औरत परदेशी का हाथ पकड़कर खींचते न्यायाधिकारी के पास ले गयी। "महाशय, इसने भरे रास्ते में मेरे पाँच सौ रुपये जबर्दस्ती छीन लिये हैं। इन्साफ़ कीजिये।" औरत ने कहा।

"कोई गवाह है?" न्यायाधिकारी ने पूछा। औरत ने जवाब दिया–"कोई नहीं है।"

"तुम इसका क्या जवाब देते हो?" न्यायाधिकारी ने दक्षिण देशवासी से पूछा।

"महाशय, मैं आज ही इस नगर में पहुँचा। यहाँ पर मेरे जान-पहचान के कोई नहीं है। मैं इस औरत को बिल्कुल नहीं जानता। मेरे पास पाँच सौ रुपये हैं। मगर ये रुपये मेरे हैं।" उस आदमी ने कहा। न्यायाधिकारी को संदेह हुआ कि वह औरत झूठ बोलती है। उसने दक्षिणवासी से कहा–"तुम्हारी बात

पर यक़ीन नहीं किया जा सकता। ये रुपये उस औरत को दे दो।"

लाचार होकर दक्षिणवासी ने अपने पाँच सौ रुपये उस औरत को दे दिये।

उस औरत के जाने के बाद न्यायाधिकारी ने परदेशी को बुलाकर कहा–"तुम उसके पीछे जाकर रुपये खींच लो। मैं देखूंगा। तुम्हें कोई तक़लीफ़ न होगी।"

दक्षिणवासी जल्दी-जल्दी उस औरत के पास गया और उसने रुपये खींचने की बड़ी कोशिश की, पर औरत ने रुपये नहीं दिये। चारों ओर लोग जमा हो गये।

औरत ने फिर न्यायाधिकारी के पास आकर शिकायत की–"महाशय, आपने मुझे जो रुपये दिलाये, उनको फिर छीनने की कोशिश करता है।"

"यह सच है! किसीने देखा है?" न्यायाधिकारी ने पूछा।

"आप चाहें तो इन सबसे पूछिये। सबने देखा है।" यह कहते उस औरत ने अपने पीछे आयी हुई भीड़ को दिखाया।

"पूछने की कोई ज़रूरत नहीं। मैंने ही इस आदमी से रुपये छीनने को कहा था। रुपये छीन लिया है, क्या?"–न्यायाधिकारी ने पूछा।

"मैं क्यों खींचने देती?" औरत ने कहा।

"मैंने भी यही सोचा। तुम्हारे यहाँ से रुपये खींचने की ताक़त उस आदमी में नहीं है। उसने ऐसी कोशिश की तो सौ लोगों की भीड़ लग गयी। तुमने कहा, पहली बार भी उसने तुमसे रुपये छीन लिया है। उस वक़्त तुम्हारे पीछे एक भी आदमी नहीं आया। इसलिए साबित हुआ कि ये रुपये उसी के हैं। तुरंत ये रुपये उसको वापस करो। फिर आइंदा ऐसा ही करोगी तो तुमको जेलखाने में भिजवा दूंगा।" न्यायाधिकारी ने उसे चेतावनी देकर भेज दिया।

पौंड्र वासुदेव द्वारका पर हमला करने की तैयारी कर रहा था कि इतने में नारद आ पहुँचे। पौंड्र ने नारद का सादर स्वागत किया और अर्घ्य, पाद्य आदि देकर सोने के आसन पर बिठाया, फिर पूछा–"महानुभाव! आप सभी लोकों का भ्रमण करते हैं। किसी भी लोक में कोई आपको नहीं रोकता। इसलिए आप मेरी एक मदद कीजिये। आप सभी लोकों में यह घोषणा कीजिये कि मैं कृष्ण और उसके दल-बल का सर्वनाश करने जा रहा हूँ। वह ग्वाला मेरा नाम रखकर लोगों में यश कमा रहा है।"

पौंड्र की बातें सुनकर नारद मुस्कुरा उठें और बोले–"यह सच है कि मैं सभी लोकों में घूमा करता हूँ। यह भी सत्य है कि सभी मेरी बात पर यक़ीन करते हैं। लेकिन तुम्हारी बात पर मुझे सन्देह है। कृष्ण और तुम्हारी बराबरी कैसी? पहाड़ के सामने तुम कंकड़ के बराबर हो! तुम कृष्ण का प्रतिद्वन्दी कैसे बन सकते हो? कृष्ण तुम्हें ज़रूर सज़ा देंगे। इसलिए मेरी बात सुनो और अपनी लड़ाई की तैयारी बंद करो। तुम यह समझते हो, तुम्हारा नाम वासुदेव है, तुम्हारे पास भी शंख, चक्र, गदा और सारंग हैं। फिर भी तुम उनके समान कभी नहीं हो सकते! नाहक़ तुम्हारा उपहास होगा! तुम्हारा घमंड चूर करने के लिए कृष्ण भी इंतजार में बैठे हैं।"

२३. पौंड्र वासुदेव का वध

उसी दिन रात को पौंड्र एक जबरदस्त फ़ौज के साथ द्वारका पर हमला करने निकला। कई हज़ार मशालों के साथ उसकी सेना द्वारका के पूर्वी दरवाज़े पर पहुँची। वहाँ पर भेरी और काहलों को इस तरह बजाया कि सारी दिशाएँ गूँज उठीं।

यादव लोग पहले से ही सतर्क थे। रात के समय भी द्वारका नगर मशालों की रोशनी में दिन जैसा प्रकाशमान रहता है। पौंड्र की सेना को देख यादव लोग घबरा न उठे; बल्कि उन्होंने बहुत जल्द अपनी सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार किया। थोड़ी ही देर में उग्रसेन, बलराम, सात्यकी, कृतवर्मा आदि ने फ़ौज को साथ लेकर पौंड्र की सेना के साथ भयंकर युद्ध प्रारंभ किया। देखते-देखते दोनों दलों की तरफ़ के कई हाथी, घोड़े और रथों का नाश होने लगा।

इधर एक तरफ़ भयानक लड़ाई हो रही थी, उधर पौंड्र के दल के एकलव्य नामक एक आदमी ने सात्यकी, कृतवर्मा, बलराम और कृष्ण का नाम ले-लेकर युद्ध के लिए ललकारा। ज्योंही यादव वीर उसके सामने आये, त्योंही उसने उनपर बाणों की वर्षा

पौंड्र ने ठठाकर हँस दिया और कहा—"मैं तुम्हारी बात का खंडन करूँ तो तुम शाप दोगे; इसलिए कुछ कहने से मैं डरता हूँ। ये बातें किसी दूसरे के मुँह से सुनता, तो अब तक उसकी जान ले लेता। तुम्हारे साथ वाद-विवाद करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम इसी मुँह से मेरी प्रशंसा करोगे। अब तुम जा सकते हो!"

नारद ने पौंड्र से कुछ न कहा। सीधे बदरिकाश्रम पहुँचे, वहाँ पर कृष्ण से पौंड्र वासुदेव के युद्ध की तैयारी की बात बतायी और अपने रास्ते चल दिये।

की। मशालची सब मशाल फेंककर भाग खड़े हुए। सारे युद्धक्षेत्र में अंधकार फैल गया। पौंड्र ने सोचा कि उसकी जीत हो गयी। उसने चिल्ला-चिल्लाकर कहा–"क़िलों की दीवारों पर चढ़िये! ध्वजाओं को तोड़ डालिये! नगर पर कब्ज़ा कीजिये!" पौंड्र की चिल्लाहट सुनते ही सेना में उत्साह और कोलाहल बढ़ गया।

पौंड्र की फ़ौज को उत्तेजित होते देख सात्यकी का शरीर क्रोध से काँपने लगा। कृष्ण ने नगर की रक्षा का भार उसे सौंप दिया था। कृष्ण की अनुपस्थिति में ही दुश्मन उत्तेजित हो रहा है, यह अपवाद भी उसे सुननी पड़ेगी। इसलिए उसने अपने दल के योद्धाओं को उत्तेजित करते हुए कहा–"अब देखिये! मैं दुश्मन का कैसा निर्मूल करने जा रहा हूँ। यह भूल न जाइये कि नगर की रक्षा का भार हम सब पर है।"

यह कहते सात्यकी ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे क़िले के चारों तरफ़ आग की लपटें पैदा हुईं। दीवार पर लांघनेवाले सैनिक डर के मारे भाग गये। सात्यकी ने उनका पीछा करते हुए ललकारा–"राजपरिवार में पैदा होकर, युद्ध-नीति का उल्लंघन करके आधी रात के
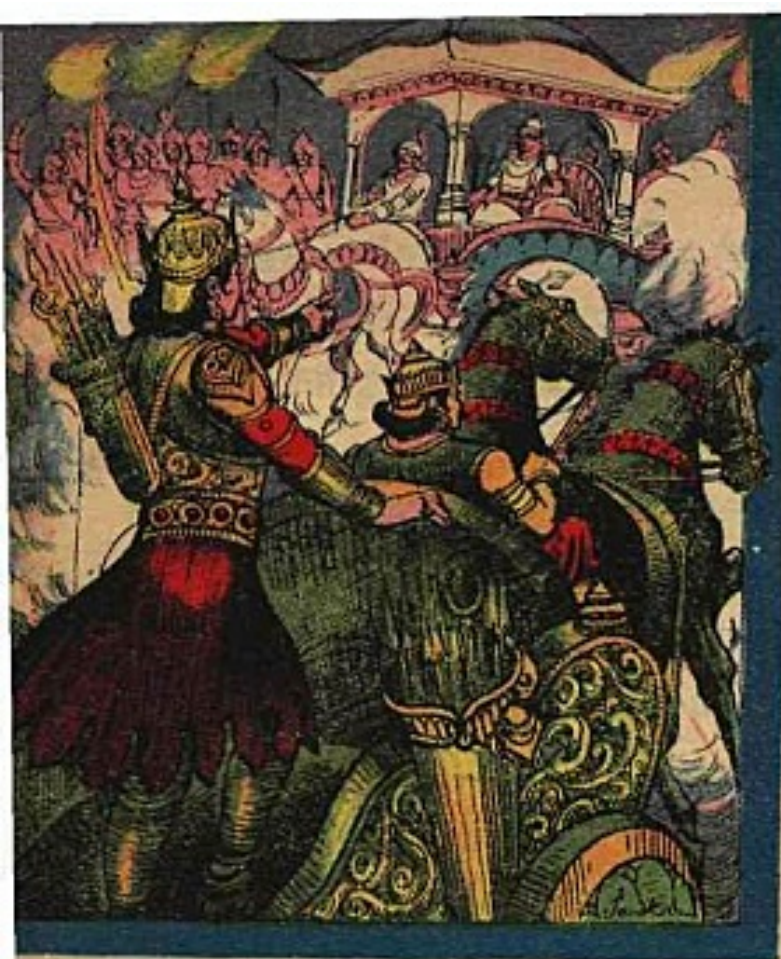
समय चोर की भाँति युद्ध करने आया हुआ वह नीच कहाँ? मैं उसीके साथ लड़ना चाहता हूँ।"

सात्यकी की ललकार सुनकर पौंड्र दांत पीसते आगे बढ़ा और बोला–"अरे, सात्यकी! तुम मुझसे लड़ने आये हो! अच्छी दिल्लगी है! लेकिन वह कृष्ण कहाँ? उसे गायें चरानी थीं! अपने को बड़ा वीर समझकर, छाती फुलाकर, घूमता रहता है! मेरे प्रताप को नहीं जानता! औरतों और जानवरों का वध करनेवाला मेरा नाम रख लेता है तो क्या हुआ? उस दुष्ट कृष्ण ने मेरे मित्र नरकासुर का वध किया है। इसीलिए मैं युद्ध में उसका अंत करने आया हूँ। तुम्हारे साथ युद्ध करने से मेरी इज्जत क्या रहेगी? मेरे सामने से हट जाओ! वरना तुमको परलोक भेज दूंगा। इससे तुम्हारे गो-पाल का घमंड चूर-चूर हो जाएगा। लगता है, वह इस नगर का भार तुम्हारे सर पर डालकर कैलास की यात्रा करने चला गया है। उसे लौट आने दो। उसकी खबर लूँगा। फ़िलहाल मैं उसे प्रसन्न करने के लिए तुम्हें मार डालता हूँ।"

दोनों में बड़ी देर तक कहा-सुनी होती रही। आपस में बाणों का प्रयोग हुआ। दोनों के रथ टूट गये। धनुष-बाण भी टुकड़े-टुकड़े हो गये। अब गदा-युद्ध करने लगे। मुक्कों से आघात भी होने लगा। लगता था कि दोनों बराबर के योद्धा हैं। मरेंगे तो साथ मरेंगे। मगर एक दूसरे को मारना नामुमक़िन था। आखिर दोनों पक्षों के योद्धाओं ने उनको लड़ने से रोक दिया और दोनों को अलग-अलग कर दिया।

इसके बाद एकलव्य और बलराम द्वन्द्व-युद्ध करने लगे। उस युद्ध में बलराम ने एकलव्य को बेहोश कर दिया और दुश्मन

की फ़ौज को अपने हल से तितर-बितर कर दिया। इतने में होश में आकर एकलव्य फिर बलराम से जूझ पड़ा। उनके लड़ते-लड़ते सबेरा हो गया।

पौंड्र ने अपनी सेना को युद्ध बन्द करने का आदेश देते हुए कहा–"इन सबको मार डालने से हमें क्या फ़ायदा है। हमारा असली दुश्मन यहाँ नहीं है। इसलिए लड़ाई बेकार है। कृष्ण को आने दो। हम अपने पराक्रम का परिचय देंगे। इन कायरों के सामने हमें अपने प्रताप को दिखाने की क्या जरूरत है?" यह कहकर उसने युद्ध बंद कर दिया और कृष्ण का इंतजार करते पौंड्र वहीं रह गया।

पौंड्र की सेना युद्ध करना छोड़ पीछे हटने लगी। पौंड्र अपनी सेना को साथ लेकर अपने मित्र काशी के राजा के यहाँ गया।

द्वारका में यादव विजयघोष करने लगे। कृष्ण के आदेश का पालन कर सके, इसलिए यादव-प्रमुख बहुत ही प्रसन्न थे।

उसी समय आकाश के पथ पर कृष्ण उन्हें दिखाई दिया। नगर के बाहर गरुड़वाहन से उतरकर दारूक द्वारा लाये गये रथ पर सवार हो कृष्ण द्वारका में

आये। बारह वर्ष बाद कृष्ण को देख यादव बहुत ही आनंदित हुए! कृष्ण ने सब को कैलास-यात्रा के अपने अनुभव सुनाये और उनसे पौंड्र के हमले की बातें सुनीं।

कृष्ण के द्वारका में लौटने का समाचार जानकर काशी में मित्र के यहाँ रहनेवाले पौंड्र ने एक दूत द्वारा उनके पास यों संदेश भेजा–

"गायों के बीच पैदा होकर बढ़नेवाले तुम धर्म की बातें बिलकुल नहीं जानते! औरतों, जानवरों और रिश्तेदारों का वध करके चुप न रहें, बल्कि मेरे नाम और

चिह्नों को भी तुमने अपना लिये हैं। तुम किसी भी तरह से मेरी समता नहीं कर सकते! यदि तुम कुछ और समय जीना चाहते हो, तो मेरा आदेश मानकर चक्र इत्यादि आयुधों को छोड़ दो। मेरा नाम जो लगा रखा है, उसे त्याग कर मेरी शरण में आ जाओ!"

दूत के मुँह से पौंड्र की बातें सुनकर कृष्ण हँस पड़े और बोले–"मैं तुम्हारे राजा के कहे अनुसार करूँगा। मुझे बुला भेजा है, इसलिए जरूर आऊँगा। चक्र आदि को छोड़ देने की सलाह दी, मैं उसपर ही छोड़ दूंगा! शरण में आने को बताया है, मैं उसीको शरण में लूंगा। बड़े आदमी की बात रखनी है।" यह कहकर कृष्ण ने दूत का सत्कार करके भेज दिया।

दूत के द्वारा संदेश सुनकर पौंड्र काशी नगर के बाहर अपने साथी राजाओं और सेना के साथ युद्ध की तैयारी करके कृष्ण का इंतजार करने लगा।

कृष्ण के रवाना होते देख सात्यकी वगैरह योद्धा भी सेनाओं के साथ उनके पीछे निकलने लगे; लेकिन कृष्ण ने उन सबको रोकते हुए कहा–"युद्ध में तुम लोगों ने विजय की अपनी बारी पूरी की है, अब मेरी बारी आ गयी है।"

कृष्ण गरुडवाहन पर सवार हो पौंड्र के पास पहुँचे। दोनों वासुदेव आपने-सामने खड़े हो गये। कृष्ण ने पौंड्र से शांत स्वर में कहा–"पौंड्र राज, मेरे सभी चिह्नों को धारण करने की तुम्हारी अभिलाषा रही तो मुझसे प्रार्थना करते, और मैं मान लेता। तुमने क्यों ऐसी मूर्खता की? अब भी कोई विलंब नहीं हुआ है, मुझसे विनती करो और क्षमा माँगो तो मैं तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ। मैं शरण में आये हुए लोगों का रक्षक हूँ। मेरे चक्र से नरकासुर जैसे कई लोग मर चुके हैं।

यहाँ जो तुम्हारे मित्र हैं, उनमें से एक भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा! मैं तुम्हारी भलाई के लिए एक बार और समझाता हूँ। मेरी बात मान जाओ!"

"मेरे चिह्नों को ही तुमने धारण किया, इसीलिए मैं तुम्हें दण्ड देने आया हूँ। मेरे आने का समाचार सुनकर ही तुम कुछ काल तक कैलास में छिपे रहे। तुमको द्वारका में न देख उस नगर को मिट्टी में मिलाये बिना छोड़ आया हूँ। ठीक समय पर आ गये हो। काल तुम्हारी प्रतीक्षा में है।" पौंड्र ने कृष्ण से कहा।

दोनों युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। कृष्ण ने लगातार पौंड्र के सभी आयुधों को तोड़ दिया और अंत में अपने चक्रायुध से पौंड्र का वध किया।

अपने मित्र पौंड्र के मरते ही रोष में आकर काशी का राजा कृष्ण से जूझ पड़ा। कृष्ण ने एक अस्त्र फेंककर काशी के राजा का सर काट दिया। वह सर उछलकर काशी के मध्य भाग में जा गिरा।

इस प्रकार कृष्ण विजयी हो द्वारका लौटे।

काशी के राजा के पुत्र ने अपने पिता की मृत्यु पर खिन्न होकर अपने पुरोहित से अग्निहोत्र कराया, तब दक्षिण अग्नि में से कृत्य नामक एक भयंकर पिशाच पैदा हुआ और बोला—"मुझे क्या आज्ञा है?" काशी के युवराज ने कृष्ण और उनके सहायकों को मार डालने का पिशाच को आदेश दिया। कृत्य द्वारका में आया। उसे देख द्वारकावासी भयभीत हो गये। कृष्ण ने उस पर अपना सुदर्शन चक्र फेंका। कृत्य वापस लौट काशी भाग रहा था, पर चक्र भी उसका पीछा करते गया। कृत्य के काशी नगर में पहुँचते ही सुदर्शन चक्र ने कृत्य के साथ पूरे काशी नगर का भी निर्मूल किया। नगर की सारी जनता मर मिटी।
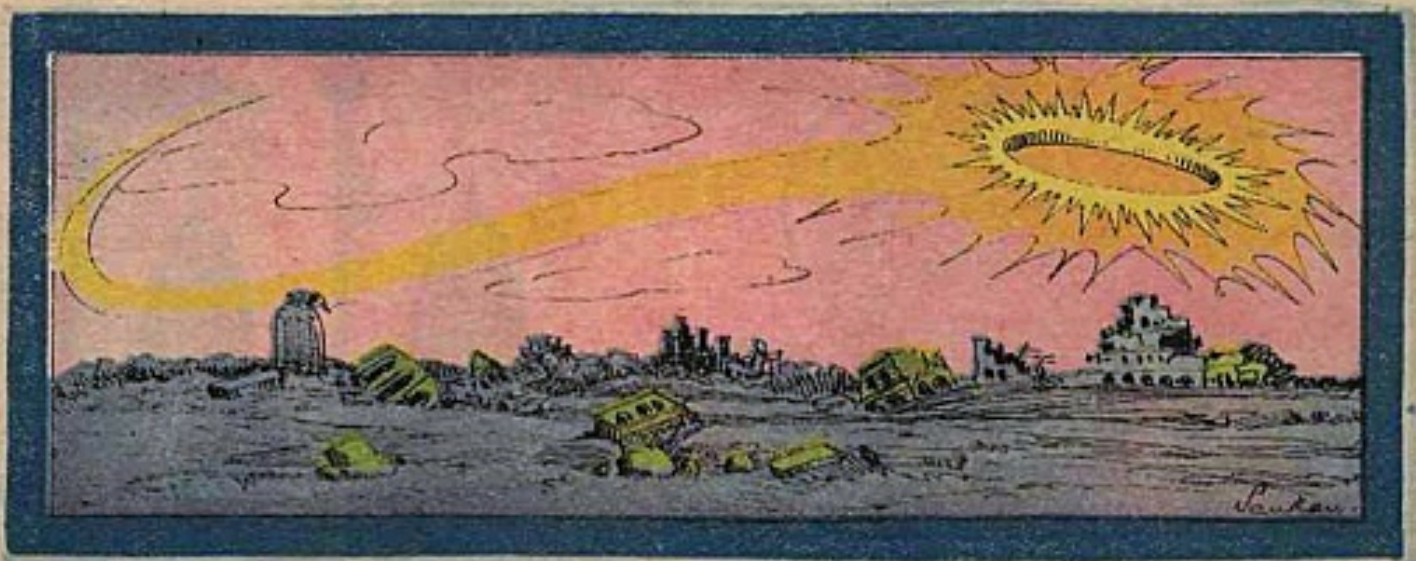
# अरण्य पुराण

[ २६ ]

मौवली की ज़िंदगी बड़े आराम से कटने लगी। जंगल में सब कोई उसके दोस्त थे। वे उसे प्रेम करते थे, और उससे डरते भी थे। जब वह जंगल के दूसरे प्रदेशों में जाता तब उसके चारों भाई उसके साथ रहते, कभी कभी वह अकेला ही घूमता। उसके बारे में कई कहानियाँ सुना सकते हैं। वे कहानियाँ बड़ी मज़ेदार हैं। उनमें एक कहानी सुनाता हूँ।

नर भेड़िया और मादा भेड़िया भीतर चले गये। उनकी गुफा के सामने मौवली ने एक बड़ी चट्टान लाकर रख दी। फिर एक मौत का गीत गाया।

भालू बड़ा वृद्ध हो गया है। उसकी जोड़ों में अब ताक़त न रही। वह चलने-फिरने की भी ताक़त न रखता था।

फौलाद की नसों और लौह माँसपेशियों वाला बाघीर भी अब पहले की तरह शिकार खेलने के लिए उछलता न था। 'अकेला' सब से बूढ़ा था। उसका शरीर ढीला हो चुका था। उसका कंकाल दिखाई देता था। वह चल-फिर भी नहीं पाता था। बहुत दिनों से मौवली उसके लिए खाना लाता और खिलाता था।

सियोनी भेड़ियों का दल तितर-बितर हो गया था। उस दल की दूसरी पीढ़ी के लोग जब पाँच साल की जवानी में थे, तब चालीस भेड़ियों को दूसरे नेता को चुनने की सलाह 'अकेला' ने दी। नेता के चुनाव में फ़ावो की जीत हुई।

फिर पहाड़ पर बैठक हुई। उसमें मौवली का कोई संबंध न था। फिर भी मौवली उसमें हाज़िर हुआ। वह

फाओ से भी ऊँचाई पर एक शिला पर 'अकेला' की पंक्ति में बैठा करता था। जब कभी वह बोलने लगता तो उसके भाषण के समाप्त होने तक सब कोई मौन रहकर सुनते।

उन दिनों में शिकार खेलने और सोने में कोई रुकावट न होती थी। दूसरे लोग "मौवली जनता" के प्रदेश में क़दम तक न रखते थे। सभा के समय भेड़ियों के शिशुओं को लाकर जब चेतावनी देते– "देखिये! बहुत अच्छा देखिये!" तब मौवली का शरीर पुलकित होता; उन सभाओं में वह ज़रूर हाज़िर होता।

एक दिन सूर्यास्त के समय मौवली ने एक हिरण को मारा। उसका आधा भाग 'अकेला' लेकर जाने लगा तब एक विचित्र पुकार सुनाई दी। शेरखाँ के मरने के बाद ऐसे गर्जन मौलवी ने कभी न सुना था। शेर के पीछे शिकार खेलते जानेवाले सियार इस तरह की चिल्लाहटें करते जो सुनने में कठोर मालूम होती हैं, उनमें द्वेष, विजय का घमंड, भय, निराशा एक तरह का उपहास सब भाव ध्वनित होते हैं। वैनगंगा के उस पार से यह चिल्लाहट सुनायी दी।

उस चिल्लाहट को मौवली के साथ उसके पीछे कूदते, खेलते और गाते चलनेवाले उसके भाइयों ने भी सुना। वे झट रुक गये। उनके रोम खड़े हो गये। वे घूरने लगे। अचानक मौवली का हाथ तलवार पर जा पहुँचा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उसकी भौंहें तन गयीं–"यहाँ शिकार खेलने की हिम्मत रखने का लकीरवाला कोई तो नहीं है।" मौवली बोला।

"यह लकीरवाले की चिल्लाहट नहीं। बड़े पैमाने पर हत्या हो रही है। कई जानवर मौत के घाट उतारे जा रहे हैं।

खूब कान खोलकर सुनो!" बड़े भाई ने कहा।

वह चिल्लाहट फिर सुनाई दी। मौवली ने गहरी साँस ली और सभा होनेवाली पहाड़ी की ओर दौड़ पड़ा। भेड़ियों की भीड़ में से कई उसी ओर दौड़ रहे थे। मौवली जब पहाड़ के पास पहुँचा तब फाओ और 'अकेला' वहीं थे। बहुत से भेड़िये उनके चारों तरफ़ बैठे थे। केवल औरतें और बच्चे अपने अपने घरों की ओर जल्दी जल्दी दौड़ रहे थे। ऐसी हालत में उनका बाहर रहना अच्छा न था।

वैनगंगा की कलकल ध्वनि शाम के वक़्त पेड़ों की मरमराहट को छोड़ उस अंधेरे में कुछ सुनायी न देता था। थोड़ी देर तक चारों तरफ़ शांति फैल गयी। लेकिन इतने में-नदी के उस पार से भेड़िये की पुकार सुनायी दी।

वह भेड़ियों की भीड़ का भेड़िया न था। उस भीड़ के सभी लोग टीले पर सभा कर रहे थे। यह कोई नया भेड़िया ही हो सकता है। कहीं बाहर से नहीं आया है।

"पिशाच! पिशाच!" कहते एक कमज़ोर बड़ा भेड़िया लंगड़ाते लंगड़ाते पहाड़ पर

चढ़ आया, वह बहुत घबराया हुआ मालूम होता था। हाँफता भी था। वह सीधे चला आया और मौवली के सामने साष्टांग दंडवत करने लगा। उसके मुँह से झाग निकल रहा था। उसका शरीर ख़ून से भीग गया था।

"शिकार खेलना होगा! तुम्हारा नेता कौन है?" फाओ ने गंभीर होकर पूछा।

"शिकार खेलना चाहिए! मैं एकाकी हूँ।" नये भेड़िये ने कहा। इसका मतलब वह किसी भीड़ का न था। 'अकेला' जानेवाला था। उसकी घबराहट से उसका शरीर काँपते हुए साफ़ दिखाई दे रहा था।

"क्या खबर है?" फाओ ने पूछा।

"पिशाच! दक्खन के पिशाच—लाल शिकारी कुत्ते! दक्खन सूना हो गया। उत्तर से आये हैं। रास्ते पर मारणहोम करते। यह चाँद पहली बार जब मुझे दिखाई दिया उस वक़्त मेरी एक पत्नी और तीन बच्चे थे। मैदान में बच्चों को शिकार खेलना सिखाती थी। आधी रात के समय उनके शिकार की पुकार सुनी। सवेरे होते ही मैंने देखा, चारों के शव थे। बदला लेने निकला और अपनी आँखों से पिशाचों को देखा।" एकाकी ने कहा।

"कितने लोग थे?" मौवली ने पूछा।

भेड़ियों का दल गरजने लगा।

"मुझे मालूम नहीं। तीनों को देखा। उन्होंने मुझे भगा दिया। देखिये! तीन पैरों पर मुझे दौड़ा दिया।" एकाकी ने कहा। उसने अपने चौथे पैर को दिखाया, बेकाम हो गया था। उस पर खून जम गया था। उसके शरीर और कंठ पर भी घाव थे।

मौवली जो 'अकेला' के लिए आहार लाया था, उसे आगे फेंकते हुए 'अकेला' बोला—"खाओ!" एकाकी उसपर झपट पड़ा और अपनी भूख मिटाकर बोला—"आपका यह खाना बेकार न जाएगा। मैं थोड़ी ताक़त पा लूँ तो मैं भी शिकार में शामिल हो जाऊँगा। मेरा परिवार नष्ट हो गया। मुझे बदला लेना है।"

उसको जबड़े और दाँत पीसते देख फाओ बोला—"ऐसे जबड़ों की जरूरत है; तभी हम जीत सकते हैं। क्या पिशाचों के पीछे शावक भी हैं।"

"नहीं, नहीं! सब लाल शिकारी ही हैं। बड़े हैं। दक्खन में ये गिरगिट खानेवाले हैं। तो भी मोटे और मजबूत हैं।" एकाकी बोला।

# ८०. मृत नगर - सेंट पियर

वेस्ट इंडीस टापुओं में मार्टिनिक एक है। उस पर एक अग्नि-पर्वत है। उसमें ८ मई १९०२ के सुबह ७-५० के क़रीब विस्फोट हुआ। उसकी आवाज़ क़ई सौ मील दूर तक सुनाई दी। तीन मिनटों के अंदर सेंट पियर नगर अग्नि पर्वत की धूली में दबकर सदा के लिए लुप्त हो गया। नगर की तीस हज़ार जनता में एक ही आदमी जान से बच गया। नगर के बंदरगाह के २८ जहाजों में से एक जहाज़ नाश होने से बच रहा। कुछ समय पूर्व सेंट पियर नगर का पुनर्निर्माण किया गया। यह नगर ढाई शताब्दियों तक व्यापार और संस्कृति के लिए मशहूर रहा। लेकिन आज वह नगर सोया पड़ा है।